सम्पूर्ण
कविताएं
पाश

सम्पूर्ण कविताएँ
पाश

सम्पूर्ण कविताएँ

पाश

संपादन एवं अनुवाद

चमनलाल

आधार प्रकाशन

पंचकूला (हरियाणा)

सजिल्द

प्रथम संस्करण : 2002

द्वितीय संस्करण : 2011

ISBN : 978-81-7675-441-5

मूल्य : 150 रुपये

प्रथम पेपरबैक संस्करण : 2002

चतुर्थ संस्करण : 2017

प्रकाशक : आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16
पंचकूला-134 113 (हरियाणा)
फोन : 0172-2566952
ई-मेल : aadhar_prakashan@yahoo.com

आवरण : शीतल वर्मा

लेज़र टाइपसेटिंग : आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला (हरियाणा)

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

Sampuran Kavitayen (A Collection of Poems)
by Paash Trans. by Chaman Lal Price : Rs. 150/

पंजाब और पंजाब से बाहर
आतंकवादी व समाज-विरोधी हिंसा में मारे गए
तमाम निर्दोष लोगों की स्मृति में

2002

2017

आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16

फोन : 0172-2566952

ई-मेल : aadhar_prakashan@yahoo.com

Sampuran Kavitayen (A Collection of Poems)
by Paash Trans by Chaman Lal

क्रम

साडे समियाँ विच

पंजाब संदर्भित कविताएँ

बिना शीर्षक/अन्य कविताएँ

पाश कविता समग्र

23 मार्च 1988 को जब खालिस्तानी आतंकवादियों ने युवा व क्रांतिकारी कवि पाश की कायरतापूर्ण हत्या द्वारा पाश की आवाज़ दबानी चाही थी, तब उन्हें इस बात का गुमान न था, कि यह हत्या उन्हें ही सबसे अधिक नुकसान पहुंचाने वाली थी। हत्या से पहले यदि पाश की आवाज़ उनकी कविता व अन्य लेखन के माध्यम से पंजाब या पंजाबी भाषी समाज तक सीमित थी तो हत्या के कुछ ही महीनों के भीतर पाश की आवाज़ पूरे देश में उनके काव्य के माध्यम से फैल गई और यह आवाज़ इतनी सशक्त साबित हुई कि 1989 में हिन्दी में उनके प्रथम काव्य संग्रह 'बीच का रास्ता नहीं होता' के प्रकाशन से मिली हिन्दी पाठकों में उनकी लोकप्रियता न सिर्फ अभी तक बरकरार है, बल्कि यह लोकप्रियता और भी बढ़ी है तथा पाश को हिन्दी पाठकों द्वारा पंजाबी भाषी कवि से भी अधिक हिन्दी भाषा के अपने कवि के रूप में अपनाया गया है व उनकी कविता को निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन व धूमिल आदि की परंपरा में स्थित किया गया है। 'बीच का रास्ता नहीं होता' के अतिरिक्त पाश की कविता के हिन्दी में छपे अन्य संकलनों को भी स्वीकृति मिलती है।

1993 में हिन्दी में पाश के दूसरे काव्य संकलन 'समय ओ भाई समय' के प्रकाशन से लगभग पूरा पाश-काव्य हिन्दी पाठकों तक पहुँच गया था, लेकिन पाश की समग्र कविता का बिंब नहीं बन पाया था। इस बीच पाश की कुछ और कविताएं भी सामने आ गईं व पाश मेमोरियल अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट ने भी पंजाबी में 'संपूर्ण पाश काव्य' वर्ष 2000 में प्रकाशित कर दिया। हिन्दी में पाश की पंजाबी लोक परंपरा की कुछ रचनाओं जैसे बोलियाँ, दोहों आदि को प्रस्तुत नहीं किया गया था। लेकिन अब 'पाश कविता समग्र' में

इन थोड़ी-सी रचनाओं का भावार्थ भी शामिल किया जा रहा है ताकि पाश-काव्य का एक संपूर्ण बिंब हिन्दी पाठकों के सामने आ सके, जिससे सामान्य पाठक व शोधार्थी— दोनों ही उसका समुचित अध्ययन कर सकें व उसके काव्यास्वाद से भी परिचित हो सकें।

'पाश कविता समग्र' में 'बीच का रास्ता नहीं होता' में प्रो. नामवर सिंह की भूमिका 'पंजाबी का लोर्का', जिसने भारतीय काव्य के संदर्भ में पाश की पहचान एक विशिष्ट भारतीय कवि के रूप में स्थापित करने में अपनी भूमिका निभाई व 'समय ओ भाई समय' की कवि केदारनाथ सिंह की भूमिका भी शामिल है। साथ ही पाश की काव्य-यात्रा व जीवन-यात्रा का संपादक द्वारा दिया परिचय भी संकलित है।

पाश के प्रथम संग्रह 'लौहकथा' की एक कविता 'कातिल' पाश की अपनी सूचना के अनुसार, जो उनकी शहादत के बाद ही सामने आई, पाश द्वारा रचित न होकर उनके एक मित्र मास्टर शमशेर निर्मल (जो बहुत साल पहले एक दुर्घटना में चल बसे थे) द्वारा रचित थी, जिसे 'संग्रह' में शापिल नहीं किया जा रहा। इसी प्रकार 'समय ओ भाई समय' संकलन की एक कविता 'मैं तुम्हारी सोच की आहट हूँ' दो टुकड़ों में गलत ढंग से बंट कर छप गई थी, उसे भी उचित ढंग से संयोजित कर दिया गया है।

आशा है 'पाश कविता समग्र' के एक ही जिल्द में प्रकाशन से अब पाश के काव्य के मूल्यांकन में और भी सुविधा होगी। आशा की जानी चाहिए कि पाश के पंजाबी के प्रकाशित-अप्रकाशित गद्य को भी आने वाले वर्षों में पाश मेमोरियल अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट एक ही जिल्द में प्रकाशित कर सकेगा, जिसके बाद हिन्दी में भी पाश का संपूर्ण गद्य छप कर सामने आ सकेगा, जिससे पाश के संपूर्ण सृजनात्मक साहित्य व अन्य लेखन का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा। यहाँ इस बात को रेखांकित किया जा सकता है कि पाश ने पंजाबी में एक-दो कहानियाँ, एक लघु नाटक, बहुत से साहित्यिक लेखों व तर्कशीलता पर आधारित वैज्ञानिक लेखों की रचना की है। पाश की डायरी व उनके पन्नों में भी गंभीर लेखन मिलता है। यह सभी प्रकार का लेखन कुशल संपादन, संयोजन व प्रकाशन की अपेक्षा रखता है। इस सारे लेखन में से पंजाबी में भी अभी कम ही प्रकाशित हुआ है और हिन्दी में तो और भी कम। पाश मेमोरियल अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट कितने वर्षों में यह जिम्मेवारी पूरी कर पाता है, यह आने वाला समय ही बताएगा।

—चमनलाल

पंजाबी का लोर्का

नामवर सिंह

स्पेन के जनकवि लोर्का की हत्या के बारे में कहा जाता है कि जब उसकी अमर कविता 'एक बुलफाइटर की मौत पर शोकगीत' का टेप जनरल फ्रेंको को सुनाया गया तो जनरल ने आदेश दिया था कि यह आवाज बंद होनी चाहिए। यह घटना लगभग पचास साल पहले की है। कविता पर— फिर वह शोकगीत ही क्यों न हो, फासिस्ट प्रतिक्रिया! पाश के रूप में पंजाब को भी एक लोर्का मिला था जिसकी आवाज़ खालिस्तानी जुनून ने बंद कर दी और वह भी संयोग से उस समय सैंतीस साल का ही जवान था, लोर्का की तरह। क्या पाश के हत्यारों ने भी लोर्का की कोई कविता पढ़ी थी? खासतौर से वह कविता जिसका शीर्षक है 'धर्मदीक्षा के लिए विनयपत्र', जिसमें एक माँ धर्मगुरु से प्रार्थना के स्वर में कहती है—

मेरा एक ही बेटा है धर्म गुरु
मर्द बेचारा सिर पर नहीं रहा।

यह धर्मभीरू माँ स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करती है 'किसी भी उम्र में तेरी तलवार से मैं कम ही सुंदर रही हूँ' और शपथ लेती है कि 'मैं तेरी आस्तिक गोली की पूजा करूँगी' और प्रार्थना इस तरह स्वीकार होती है कि वह 'आस्तिक गोली' बेटे को जल्द ही स्वर्ग भेज देती है! फासिज़्म के पास हर चीज का जवाब सिर्फ एक है— गोली! वह चीज़ शोकगीत हो या प्रार्थना!

इस संदर्भ में उर्दू का वह प्रसिद्ध शेर और भी अर्थपूर्ण हो उठता है—

फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जिगर
मर्दे-नादाँ पर कलामे-नर्मो-नाज़ुक बेअसर!

लेकिन हत्यारे 'मर्दे-नादाँ' नहीं होते और उनके जिगर भी शायद हीरे से ज़्यादा सख़्त होते हैं।

इन हत्यारों से कम सख्त तो पुलिस के वे सिपाही थे जिनको संबोधित करते हुए पाश ने किसी समय एक लंबी कविता लिखी थी, जिसमें वह कहता है कि—

हम अब खतरा हैं सिर्फ उनके लिए
जिन्हें दुनिया में बस खतरा ही खतरा है

और 'गीतों जैसे जीवन का बेताब आशिक' अंत में पूछता है—

अरे पुलसिए बता, मैं तुझे भी
इतना खतरनाक दीखता हूँ?

पाश खतरनाक कवि तो था। बार-बार जेल और पुलिस की यातनाएँ प्रमाण है। लेकिन इतना खतरनाक नहीं कि उसकी आवाज़ हमेशा के लिए बंद कर दी जाए! सरकार के साथ इस 'लुका-छिपी' के खेल में 'गीतों जैसे जीवन के बेताब आशिक' ने किसी तरह अठारह साल का समय छीन ही लिया। इन अठारह वर्षों में इतमीनान से कविता 'रचने' के कुछ पल शायद ही कभी मिले हों; फिर भी पाश ने लगभग सवा-सौ कविताएँ (लगभग दो सौ— सं.) लिखीं जिनमें ऐसी कविताएँ काफी हैं जो पंजाबी तो क्या समूची भारतीय कविता के इतिहास में निर्विवाद रूप से सुनहरे पन्नों में दर्ज रहेंगी।

इस खतरनाक समझे जाने वाले कवि को अपनी नियति का पूरा-पूरा एहसास था, तभी तो 'कलाम मिर्जा' शीर्षक कविता में उसने पहले ही यह लिख रखा था— 'और सुना है मेरा क़त्ल भी इतिहास के आने वाले पन्ने पर अंकित है।' उसे यह भी पता था कि 'अपने तो सिर्फ गीत हैं। समय अपना नहीं है।' गीतों की ताकत के बारे में उसे कोई मुगालता न था। मजबूरी की घड़ियों में उसने यह भी सोचा—

कविता बहुत ही शक्तिहीन हो गई है
जबकि हथियारों के नाखून बुरी तरह बढ़ आए हैं
और अब हर तरह की कविता से पहले
हथियारों से युद्ध करना बहुत जरूरी हो गया है।

वैसे, हथियार उठाने का दम भरने वाले कवि और भी हैं और उन बड़बोले लोगों में ज़्यादातर ऐसे भी हैं जिन्होंने किसी हथियार की शक्ल भी नहीं देखी है। लेकिन पाश उन थोड़े से कवियों में हैं जिन्हें 'लोहे' का गहरा एहसास है जैसा कि 'लोहा' शीर्षक कविता कहती है—

तुम लोहे की कार में घूमते हो
मेरे पास लोहे की बंदूक है।
मैंने लोहा खाया है।
तुम लोहे की बात करते हो।

लोहा केदारनाथ अग्रवाल ने भी 'देखा' था। धूमिल को भी लोहे का 'स्वाद' मालूम था। लेकिन पाश ने तो लोहा 'खाया' था और उसकी 'अंतड़ियों में गड़ी हुई थीं / रंगों और रहस्यों वाली विचित्र कविता की किरचें।' इसीलिए कुल मिलाकर था वह कवि ही- सरापा कवि। ऐसा समझदार कवि जिसे उस जगह का पता था 'जहाँ कविता ख़त्म होती है' और उस जगह का भी 'जहाँ कविता ख़त्म नहीं होती।' और ज़िंदगी की इस मंजिल पर पहुँच कर वह दर्द के स्वर में कहता है—

मैं-जो सिर्फ एक आदमी बनना चाहता था
ये क्या बना दिया गया हूँ

जैसा कि 'मैं अब विदा होता हूँ' शीर्षक कविता में उसने बड़ी हसरत से कहा है— 'कि मुझे जीने की बहुत इच्छा थी कि मैं गले तक ज़िंदगी में डूबना चाहता था।' पाश को और जीने की इच्छा इसलिए थी कि उसके पास 'सौंदर्य की उस स्वप्न-सीमा से इधर / अभी कहने को बहुत बातें हैं।'

क्या हत्यारों को पता है कि उन्होंने पंजाबी भाषा के भविष्य से क्या छीना है? कैसे कहें कि वाहे गुरु! उन्हें माफ करना।

वह हाथ कट गया है जिसने पंजाबी में 'हाथ' जैसी कविता लिखी। 'हाथ' पर एक कविता तुर्की कवि नाज़िम हिकमत ने भी लिखी थी। उसके बाद तो 'हाथ' पर कई कविताएँ लिखी गईं। लेकिन पंजाबी के पाश के 'हाथ' का अपना खास तेवर है—

हाथ अगर हों तो
'हीर' के हाथों से 'चूरी' पकड़ने के लिए ही नहीं होते
'सैदे' की बारात रोकने के लिए भी होते हैं
'कैदो' की बाहें तोड़ने के लिए भी होते हैं
हाथ श्रम करने के लिए ही नहीं होते
लुटेरे हाथों को तोड़ने के लिए भी होते हैं

इस तरह पूरी कविता 'द्वंद्व' सिद्धांत पर रची हुई एक मुकम्मल इंसान की तस्वीर है।

'हाथ' के साथ ही पाश की 'प्रतिबद्धता' कविता याद आती है, जिसके सच की आँच में प्रतिबद्धता के नाम पर लिखी बहुतेरी कविताएँ राख

होती दिखाई देती हैं। समूची कविता से तोड़कर कुछ भी पेश करना कविता के साथ सरासर अन्याय होगा, फिर भी उसका आभास देने के लिए ये कुछ पंक्तियाँ—

हम चाहते हैं अपनी हथेली पर कोई इस तरह का सच
जैसे गुड़ की चाशनी में कण होता है
जैसे हुक्के में निकोटिन होती है
जैसे मिलन के समय महबूब के होठों पर
कोई मलाई जैसी चीज़ होती है।

गुड़ की चाशनी, हुक्के की निकोटिन और महबूब के होठों की मलाई—ये सब उस सच के ही अलग-अलग रूप हैं जिन्हें कविता के आलोचक बेमेल बिम्बों की अन्तर्योजना कहना चाहेंगे। लेकिन पाश बिम्बों की भाषा में सोचते और गाते हुए भी सब कुछ 'सचमुच' का ही चाहता है—

हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
और हम सब कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं
ज़िंदगी, समाजवाद, या कुछ और ....।

'सचमुच' की यह चाह पाश की सोच में इस तरह रसी-बसी है कि उसकी कविता खेतों, खलिहानों और खुरलियों की जीती-जागती ठोस भाषा में अनायास ही बोलती-बतियाती है। जैसे 'हुस्न कोई मक्की की नमक छिड़की रोटी जैसी लज्जत' है, 'सपने बूढ़े बैल के उचड़े हुए कंधों जैसे।' कविता की यह वह दुनिया है जिसमें 'गंड में जमते गुड़ की महक है', चाँद की चाँदनी में चमकती सुहागी हुई बत्तर धरती है, तीतरपंखी बदली है, बाल्टी में दुहे हुए दूध पर गाती हुई झाग है और इसी तरह के और भी बिंब हैं जिनका प्रदर्शन करके आज बहुत से कवि अपने आपको 'खेतों का पूत' कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि पाश ऐसा 'सपूत' न था।

पाश दिखावे से दूर ही नहीं, बल्कि हर तरह के दिखावे के लिए चुनौती था। उसकी कविता में जहाँ वक्तृत्व का आवेग है, वहाँ भी एक पारदर्शी खरापन है। चुनौतियों में भी खरा आत्मविश्वास है, कोरा बड़बोलापन नहीं, जैसे—

किसी भी धर्म का कोई ग्रंथ
मेरे जख्मी होठों की चुप से अधिक पवित्र नहीं है।

क्या जख्मी होठों की यह चुप ढिठाई या कुफ्र है? फैसला देने से पहले एक अन्य कविता की निम्नलिखित पंक्तियों को भी ध्यान में रख लें—

जा, तू शिकायत के काबिल होकर आ
अभी तो तेरी हर शिकायत से
तेरा कद बहुत छोटा है

इस अंदाज में बात करने का हक उसी कवि को है जिसे विश्वास हो कि 'मेरा अब हक बनता है'। पाश ने यह हक कमा कर हासिल किया था।

कवि पाश की रचना-यात्रा का सबसे निर्णायक मोड़ मेरी समझ से, वह है जब उसने 'कामरेड से बातचीत' शीर्षक कविता-शृंखला शुरू की। ज़िंदगी के बारे में पाश किस दिशा में सोच रहा था इसका कुछ अंदाजा पहली कविता की इन पंक्तियों से लग सकता है—

यह वक़्त बहुत खूँखार है साथी!
कि महान एंगेल्स की 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य'
हमने एक साथ पढ़ी थी
तुमने उस दिन ख़त्म हो रही व्यक्तिगत सम्पत्ति पर थूका
परिवार से विदा लेकर
राज्य से टकराने चले गए
और मैं घर की छतों से गिर रहे घुन का
राज सत्ता की तरह मुकाबला करते हुए
'परिवार' शब्द से अर्थ के ख़त्म हो जाने को रोकता रहा।

यह राजनीति की कोरी बहस नहीं, बल्कि संघर्षों के बीच पकते हुए कवि का अनुभव है। मुक्तिबोध के शब्दों में 'संवदेनात्मक ज्ञान' या कि 'ज्ञानात्मक संवेदन।'

इसके साथ पाश की 'रचना-प्रक्रिया' के अंदर आने वाले परिवर्तन को देखना हो तो 'कामरेड से बातचीत' (4) कविता का यह बंद—

सिर्फ अपनी सुविधा के लिए तुमने
शब्दों को तराशना सीख लिया है
तुमने इस तरह कभी नहीं देखा
जैसे अंडों में मचल रहे चूजे हों
मैंने शब्दों को झेला है, उनके तीखे नुकीले रूप में
किसी भी मौसम के कोप से भागने वालों को
अपने रक्त में शरण दी है
मैं गुरु गोविन्द सिंह नहीं
इन्हें कविता का कवच पहनाकर भेजने के बाद
बहुत-बहुत देर रोया हूँ।

एक संवदेनशील कवि और साथ ही एक संवेदनशील कम्युनिस्ट ही अंडों में मचल रहे चूजे जैसे शब्दों को लेकर इस तरह रो सकता है। कहते हैं, इस तरह कभी लेनिन भी रोए थे। पाश को तो आज हम स्वयं ही सुन रहे हैं! यह रोना पलायन नहीं है, संघर्ष का नया तेवर है। पाश की कविता इसी दुहरे संघर्ष की ऐतिहासिक दस्तावेज है!

पाश की कविता की यह ताकत है जो अनुवाद में भी इतना असर रखती है। मूल पंजाबी में वह कैसी होगी, इसका सिर्फ अंदाज़ा ही लगाया जा सकता है। कान जिस भाषा से परिचित हों, लेकिन ज़बान जिसका जायका न जानती हो, उसके बारे में इससे अधिक कुछ भी कहना गुस्ताखी होगी। हमें तो चमनलाल का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने अनुवाद को संवारने-निखारने का धीरज छोड़कर जल्द-से-जल्द पाश की कविताओं के अधिकांश को हिन्दी में सुलभ करा दिया। आशा की जानी चाहिए कि इस दिशा में वे भी सक्रिय होंगे जो कवि हैं— पाश के समानधर्मा हिंदी कवि।

पाश की कविता : लोहा और रेशम के तारों से बुनी एक दुनिया

केदारनाथ सिंह

पाश का नाम संपूर्ण समकालीन भारतीय कविता की जलवायु का एक अविच्छिन हिस्सा बन चुका है। उनकी कविताओं का रंग और मिजाज आज भी उतना ही नया है, जितना वह तब था, जब एक गहरी उथल-पुथल के गर्भ से वे कविताएँ पैदा हुई थीं। यह एक सुपरिचित तथ्य है कि कवि पाश की पैदाइश एक आंदोलन के गर्भ से हुई थी। वे न सिर्फ एक गहरे अर्थ में राजनीतिक कवि थे, बल्कि सक्रिय राजनीति-कर्मी भी थे। ऐसे कवि के साथ कुछ खतरे होते हैं, जिनसे बचने के लिए यथार्थ-चेतना के साथ-साथ एक गहरी कलात्मक चेतना, बल्कि कला का अपना एक आत्मसंघर्ष भी जरूरी होता है। पाश की कविताएँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि उनके भीतर एक बड़े कलाकार का वह बुनियादी आत्मसंघर्ष निरंतर सक्रिय था, जो अपनी संवेदना की बनावट, वैचारिक प्रतिबद्धताएँ और इन दोनों के बीच के अंतर्संबंध को निरंतर जाँचता-परखता चलता है। कुछ समय पूर्व हिन्दी की एक पत्रिका ने पाश के कुछ पत्र प्रकाशित किए थे। उनको पढ़कर मुझ जैसे पाठक को पहली बार पता चला कि पाश के भीतर कला-सृजन की मूलभूत समस्याओं की कितनी गहरी चेतना थी।

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ, जैसाकि अनुवादक ने बताया है, अनेक स्रोतों से एकत्र की गई हैं— यहाँ तक कि कवि की डायरी और घर-परिवार से प्राप्त जानकारी को भी चयन का आधार बनाया गया है। पुस्तकों से ली

गई कविताओं पर तो कवि की मुहर लगी है, पर डायरी से प्राप्त रचनाओं या काव्यांशों को देकर पाश के उस पक्ष को भी सामने लाया गया है, जहाँ एक सतत् विकासमान कवि के सृजनरत मन का एक प्रामाणिक प्रतिबिंब सामने उभरता है। यह सामग्री पाश के प्रेमी पाठकों के लिए इस संग्रह को और भी आकर्षक बनाती है और साथ ही इस बात का अवसर भी देती है कि कवि को उसकी संपूर्णता में देखा-परखा जाए।

कविताओं के अनुवाद के आधार पर उनके बारे में एक राय कायम करना जोखिम भरा काम है। एक प्रसिद्ध परिभाषा के अनुसार कविता वह है जो अनुवाद में खो जाती है। उसे खोने से कैसे बचाया जाए, हर अनुवादक की सबसे बड़ी समस्या यही होती है। इस संग्रह की कविताओं का अनुवादक इस समस्या से बेख़बर नहीं है। मेरे जैसे पाठक के लिए, जो पंजाबी न जानने के कारण मूल से सर्वथा अपरिचित है, ये हिन्दी रूपांतर एक प्रीतिकर पाठ की तरह हैं। पाश गहरे अर्थ में एक पंजाबी कवि थे— पंजाब की मिट्टी के रंगवाली कविता के जनक। इसलिए उनके यहाँ कई बार ऐसे प्रयोग आते हैं— ऐसे संदर्भ, कथा-संकेत तथा ठेठ मुहावरे भी, जो हिन्दी पाठक के लिए अपरिचित हो सकते हैं। अनुवाद में अपरिचय के ये सुखद आघात एक भिन्न भाषा-भाषी पाठक के भीतर मूल के आकर्षण को थोड़ा बढ़ाते ही हैं और प्रस्तुत अनुवाद में भी यह आकर्षण मौजूद है।

पाश जीवन के कवि हैं— जीवन की पूरी अर्थवत्ता के कवि। इस अर्थवत्ता की तलाश वे उसी दुनिया में करते हैं, जो उनके अनुभव का आसन्न संदर्भ है। वे सबसे ज़्यादा भरोसा करते हैं उस अनुभव पर जो सीधे वहाँ से आता है, जहाँ सबसे अधिक द्वंद्व या टकराव है। पर जो बात उन्हें 'लाउड' या मुखर होने से बचाती है और अपनी ज़्यादातर कविताओं में वे इस रचनात्मक संभाल का परिचय देते हैं, वह है अपने माध्यम पर उनकी अचूक पकड़। पाश मूलतः एक प्रगीतधर्मी कवि हैं, पर वे इस प्रगीतधर्मिता का उपयोग अनेक स्तरों पर और अनेक ढंग से करते हैं। इस काम में वे यदि एक ओर पश्चिमी कविता से अपने प्रगाढ़ परिचय से लाभ उठाते हैं तो दूसरी ओर उससे कुछ अधिक ही पंजाबी साहित्य की मौखिक परंपरा से भी। उनकी कविताओं का जो सौंदर्यालोक निर्मित होता है, वह इसी शब्दलोक की मौखिक परंपरा से अपना उजास पाता है।

प्रस्तुत चयन में एक सुखद विविधता मिलेगी। यह विविधता पाश की कविता के चरित्र में निहित है, हालांकि यहाँ उसका एक प्रत्यक्ष कारण यह है कि कविताएँ किसी एक पुस्तक से नहीं, बल्कि विविध स्रोतों से ली गई हैं। इससे अनायास ही चयन को एक बहुवर्णी व्यक्तित्व मिल गया है। पर

रंगों के इस वैविध्य के भीतर पाश की मूलवर्ती काव्यचेतना की अंतर्निहित एकसूत्रता यहाँ से वहाँ तक दिखाई पड़ेगी। इस सूत्र का एक छोर यदि लोहे जैसे कठोर यथार्थ के भीतर कहीं छिपा है तो दूसरा रेशम जैसे कोमल भावलोक के भीतर। पाश के लिए ये दोनों छोर दो अलग-अलग छोर नहीं हैं, बल्कि एक बिंदु पर दोनों सघन रूप से मिल जाते हैं। उस बिंदु की खोज पाश एक विलक्षण रचनात्मक सावधानी से करते हैं और कोई कहना चाहे तो कह सकता है कि उस बिंदु को पा लेना ही उनकी रचना-प्रक्रिया की चरम सार्थकता है। इस संग्रह में ऐसे उदाहरण अनेक मिल सकते हैं और यहाँ कहना असंगत न होगा कि पाश की कविता उदाहरण होने से बचकर नहीं चलती। वे उन थोड़े से कवियों में हैं, जिनकी असंख्य पंक्तियाँ पाठकों की जबान पर आसानी से बस जाती हैं। नीचे की पंक्तियाँ मुझे ऐसी ही लगीं और शायद उनके असंख्य पाठकों को भी लगेंगी— जो पढ़ने के साथ ही समाप्त नहीं हो जातीं, बल्कि साथ-साथ दूर तक चलती चली जाती हैं— *चिंताओं की परछाइयाँ / उम्र के वृक्ष से लंबी हो गई / मुझे तो लोहे की घटनाओं ने / रेशम की तरह ओढ़ लिया।*

लोहा और रेशम के विलक्षण तनाव से बुनी ये कविताएँ कवि पाश के रचनालोक के बारे में प्राप्त जानकारी में न केवल वृद्धि करेंगी, बल्कि एक गहरा तोष और तृप्ति भी देंगी— एक ऐसी तृप्ति जिसके लिए उसके रचयिता के प्रति सिर्फ कृतज्ञ हुआ जा सकता है और यहाँ बेशक उसके अनुवादक के प्रति भी।

पाश की काव्य-यात्रा

चमनलाल

पाश की पहली कविता 1967 में छपी, जबकि पहली कविता उसने केवल पंद्रह वर्ष की आयु (1965) में लिखी। कवि के रूप में पाश को प्रसिद्धि 1969 से ही मिलनी शुरू हो गई थी और 1970 में, जब पाश जेल में थे, उनका सर्वप्रथम कविता-संग्रह 'लौहकथा', जिसमें उनकी 36 कविताएँ संकलित थीं, छपकर आ गया था और इसने एक सनसनी-सी फैला दी थी। केवल बीस वर्ष की आयु में पाश पंजाबी के एक प्रतिष्ठित कवि बन गए थे। 1971 में पाश जेल से बाहर आ गए थे। 1974 में उनका दूसरा कविता-संग्रह 'उड्डदे बाजाँ मगर' छपकर आया, जिसमें उनकी 41 कविताएँ संकलित थीं। इस संग्रह को कई विश्वविद्यालयों ने अपने एम.ए. स्तर के पाठ्यक्रमों के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में चुना, यहाँ तक कि संघ लोक सेवा आयोग (यू.पी.एस.सी.) ने भी अपनी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में यह संग्रह लगाया।

पाश का तीसरा कविता संग्रह 'साडे समियाँ विच' 1978 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में उनकी अपेक्षाकृत लंबी कविताएँ संकलित हैं और इनकी संख्या 28 है। इस संग्रह के बाद पाश की शहादत तक उनका कोई अन्य संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। इस बीच पाश ने कविताएँ लिखी भी अपेक्षाकृत कम। 24 अप्रैल, 1988 को उनकी स्मृति में हुए एक समारोह में उनका एक और कविता-संग्रह 'लड़ांगे साथी' रिलीज़ किया गया। इस संग्रह में अधिकांश कविताएँ उनके पहले तीन संग्रहों से ही संकलित की गई हैं, लेकिन 23 ऐसी कविताएँ भी इस संकलन में हैं, जो पहले के तीन संग्रहों में नहीं हैं।

ऐसी कविताएँ भी थीं, जो पाश ने लिखीं, लेकिन प्रकाशित नहीं करवाईं, जिन्हें वे अपने उन दोस्तों के यहाँ छोड़कर चले जाते रहे, जिनके पास वे कभी-कभार रुकते थे। पाश मेमोरियल अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट ने पिछले कई वर्षों के प्रयासों से पाश की इन बिखरी हुई पूरी-अधूरी कविताओं का संकलन करके अब एक ही जिल्द में पाश की संपूर्ण कविताओं को छाप दिया है जिससे पाश की कुल कविताएँ लगभग दो सौ के आकंड़े तक पहुंच गई हैं, जिनमें करीब डेढ़ सौ पूरी व बाकी अधूरी या टुकड़ों में उपलब्ध कविताएँ हैं।

कविता के अतिरिक्त पाश ने अपनी डायरी में साहित्य व राजनीति संबंधी चिंतन किया है। 'सिआड़', 'हाक', 'हेम ज्योति', व 'एंटी-47' का संपादन करते हुए संपादकीय टिप्पणियाँ व साहित्यिक--राजनीतिक लेख लिखे हैं। आतंकवादियों द्वारा उनकी हत्या करने का मुख्य कारण उनका 'हाक' व 'एंटी-47' शीर्षक हस्तलिखित पत्रिकाओं में 'खालिस्तानी' विचारधारा का सशक्त विरोध ही है। अपने लेखन के अतिरिक्त पाश जनतांत्रिक मूल्यों के संघर्ष के सक्रिय कार्यकर्त्ता भी थे। इस लिहाज से वे राल्फ फाक्स, काडवेल आदि की परंपरा में आते हैं, जिन्होंने लेखन के साथ-साथ जनसंघर्षों में सक्रिय भागेदारी भी की। पाश मेमोरियल ट्रस्ट में पाश की डायरी, पाश के पन्नों, साहित्यिक व तर्कशील लेखों के कुछ संकलन छापे हैं। हिन्दी में भी पाश का चुनिंदा गद्य छपा है।

लेकिन कुल मिलाकर पाश का कवि--रूप ही उनका सबसे प्रमुख रूप बनकर उभरता है, यद्यपि उनका यह कवि-रूप भी उनके संपूर्ण जीवन, व्यक्तित्व और संघर्षों का ही आलोकमय रूप है, जिसे उनके जीवन व उनकी गतिविधियों से अलग कर नहीं देखा जा सकता।

और जब हम पाश के कवि-रूप को देखते हैं तो पंजाबी साहित्य-संस्कृति के संदर्भ में उनकी तुलना पंजाबी के एक अन्य अत्यंत लोकप्रिय कवि शिव बटावली से करने की इच्छा होती है। लेकिन इन दोनों कवियों में इस बात के सिवा कुछ भी समान नहीं है कि दोनों ही कवि 37 वर्ष की अल्पायु में चल बसे, दोनों का ही पंजाबी साहित्य-मंच पर सनसनीखेज तरीके से प्रवेश हुआ और दोनों ही बहुत लोकप्रिय रहे। वास्तव में जिन दिनों शिव बटालवी लोकप्रियता के शिखर पर थे, उन्हीं दिनों पंजाबी काव्यमंच पर पाश के प्रवेश ने शिव बटालवी को उनके शिखर से नीचे खींच लिया।

शिव बटालवी ख़ुद गाते थे और उनके गीत आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। जगजीत-चित्रा सिंह आदि प्रतिष्ठित गायकों ने उनके गीत रिकार्ड करवाए हैं। लेकिन शिव बटालवी 'मौत की शान' के शायर थे और पाश उसके

मुकाबले 'ज़िंदगी की शान' के शायर बनकर आए। 'हमें तो जोबन रुत में मरना' शिव के साहित्य व जीवन का लक्ष्य था और उन्होंने शराब में डूबकर 37 वर्ष की अल्पायु में मौत की गोद में जाकर यह लक्ष्य पूरा कर लिया। लेकिन उसी समय पाश ज़िंदगी की शान और संघर्ष की कविताएँ लेकर साहित्य-मंच पर आए और उन्होंने अपनी कविता से पंजाबी पाठकों की मनोवृत्ति को शिव बटालवी की मौत की संवेदनाओं से आजाद कर एक खूबसूरत ज़िंदगी हासिल करने के संघर्ष की ओर मोड़ दिया। इस नाते पंजाबी साहित्य में पाश का एक ऐतिहासिक महत्त्व है।

पाश की अब तक उपलब्ध 200 से अधिक कविताओं से पाश का जो कवि-बिंब उभरकर सामने आता है, उसमें विषयगत वैविध्य और रूप के स्तर पर प्रयोगधर्मिता तो मिलती ही है, अपने किस्म की एक ताजगी और मौलिकता भी मिलती है, जिसकी वजह से वे 1970 के बाद की पंजाबी कविता के एक सशक्त प्रतिनिधि व प्रतीक बनकर उभरे। अमरजीत चंदन ने सही कहा है कि पाश ऐसे मौलिक कवि हैं, जिनकी नकल नहीं की जा सकती, यद्यपि अनेक परवर्ती कवियों ने पाश के मुहावरे की नकल करने की कोशिश की है।

विषयगत वैविध्य होते हुए भी एक केन्द्रीय धारा पाश की कविता में लगातार बहती है और यह केन्द्रीय धारा है— मनुष्य की, उसके सम्मान की, उसकी शान की गौरव-गाथा। उनकी कविता में मौत के, अमानवीय जीवन-परिस्थितियों के, मनुष्य के दमन व उत्पीड़न के प्रति एक चुनौती है, एक विद्रोह है और अदम्य आत्मविश्वास कि अंतिम जीत मनुष्य की, मनुष्य की शान के साथ जीने की ख्वाहिश व उसकी कोशिशों की ही होगी। मनुष्य की शान का यह अद्‌भुत गान ही पाश को नाज़िम हिकमत और पाब्लो नेरूदा की परंपरा का क्रांतिकारी कवि बनाता है। लेकिन पाश सही अर्थों में एक क्रांतिकारी कवि थे, अन्य अनेक समकालीनों की तरह क्रांतिकारी लफ्फाज नहीं। और यदि पाश की काव्य-यात्रा का क्रमिक विकास देखा जाए तो उनके चिंतन व काव्य में हुए निरंतर विकास व परिपक्वता को स्पष्टता से रेखांकित किया जा सकता है।

पाश ने 1967 में जब कविता लिखना शुरू किया तो देश में नक्सलवादी आंदोलन की व्यापक गूँज थी। पाश इस आंदोलन से गहरे व गंभीर रूप से प्रभावित हुए, लेकिन उन्होंने इस आंदोलन की विचारधारा— मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओत्से तुंग विचारधारा को अच्छी तरह पचाया और इस आंदोलन के उस हिस्से से जुड़े, जो जन-आंदोलन चलाने में विश्वास रखता था, न कि व्यक्तिगत हत्याओं या आतंक की राजनीति में। जन-आंदोलन में गहरा

विश्वास रखने से ही पाश की कविता में सामान्यजन की क्रांतिकारी संभावनाओं के बिंब पूरी शिद्दत से उभरकर आते हैं। पाश की कविता के सामान्यजन प्राय: गाँव के हैं— किसान, खेत-मजूदर, बकरियाँ चरानेवाले, सिपाही इत्यादि। इन लोगों की चेतना अभी भले ही क्रांतिकारी न बन पाई हो, लेकिन क्रांति की संभावनाएँ इन्हीं लोगों में हैं। इसे पाश अच्छी तरह पहचानते व समझते थे, जिसे उन्होंने अपनी कविता में बिल्कुल नए व ताजे बिंबों में ढालकर प्रस्तुत किया।

रूप के स्तर पर पाश की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उनकी बिंबावली है। न सिर्फ पंजाबी कविता, बल्कि पूरी भारतीय कविता में यह एक नई किस्म की बिंबावली थी। यही वजह थी कि जब भी पाश की कोई कविता अनूदित होकर दूसरी भाषाओं तक पहुंची, उसे तुरंत स्वीकृति व लोकप्रियता मिली। पाश के काव्यबिंब पंजाब के ठेठ ग्रामीण जीवन से लिए गए हैं और उनके कुछ बिंबों में चौंकाने-जैसी प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे 'युद्ध और शांति' कविता में शांति के लिए 'गाँधी के जाँघिए' की उपमा।

पाश के सर्वप्रथम काव्य-संग्रह 'लौहकथा' की पहली कविता है— 'भारत'। इस कविता में कवि देश व देशप्रेम की अपनी परिभाषा स्पष्ट करता है। पाश के लिए देश भौगोलिक सीमाएँ नहीं है, बल्कि उनके लिए देश का मतलब देश की मेहनतकश जनता है। कवि उद्घोषणा करता है—

इस शब्द के अर्थ
खेतों के उन बेटों में हैं
जो आज भी वृक्षों की परछाइयों से
वक़्त मापते हैं

भारत के अर्थ
किसी दुष्यंत से संबंधित नहीं
वरन खेतों में दायर हैं
जहाँ अन्न उगता है
जहाँ सेंध लगती है...

भारत को दुष्यंत-पुत्र भरत से अलग कर देश की अवधारणा भी वे वर्ग-स्तर पर करते हैं। यानी यह देश किसी सामंत-पुत्र की विरासत नहीं, बल्कि यहाँ की मेहनतकश जनता की विरासत है, पाश अपनी पहली ही कविता में यह घोषित करते हैं।

देश की धारणा के साथ-साथ पाश व्यवस्था को भी अपनी काव्यमयी व्यंग्यात्मक चोट का लक्ष्य बनाते हैं। इसी संग्रह की एक अन्य कविता 'अब

मेरा हक बनता है' में वे देश की कथित लोकतांत्रिक व्यवस्था पर कड़ी चोट करते हैं, लेकिन 'देशभक्ति' की सकारात्मक अवधारणा भी पाश इसी संग्रह की अन्य कविता 'देशभक्त' में सामने रखते हैं, जिसे उन्होंने चंदन को समर्पित किया है। इस कविता में वे साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय संघर्षों की गौरव-गाथा कहते हैं और चेग्वेरा, अफ्रीका व क्यूबा आदि के साथ-साथ बंगाल या भारत के अन्य हिस्सों के जनसंघर्षों की चर्चा करते हैं। साम्राज्यवाद का सक्रिय विरोध बीसवीं सदी के विश्व में देशप्रेम का अभिन्न अंग रहा है, जिसे पाश अपनी इस कविता में स्थापित करते हैं।

देशप्रेम किस प्रकार एक संकीर्ण भावना न होकर अंतर्राष्ट्रीयता से ओतप्रोत भावना है, यह केवल क्रांतिकारी ही जानते हैं और यही क्रांतिकारी भावना पाश से 'श्रीलंका के क्रांतिकारियों' का अभिनंदन करवाती है और यही पाकिस्तानी पंजाबी कवि अहमद सलीम से उनके अपने संघर्षों में एकजुटता जाहिर करवाती है। यह दोनों कविताएँ उनके दूसरे कविता-संग्रह 'उड्डदे बाजाँ मगर' में संकलित हैं।

देश की भावना से जुड़ी कविताएँ पाश ने अपनी पूरी काव्य-यात्रा के दौरान लिखी हैं। 'साडे समियाँ विच' संग्रह में 'एमरजेंसी लगने के बाद' देश की स्थिति का दुखात्मक आकलन है। 'लड़ांगे साथी' संग्रह में संकलित व 1985 में दिल्ली के नवंबर-दंगों के बाद लिखी कविता 'बेदखली के लिए विनयपत्र' में देश के प्रति फिर एक बार तीव्रतम भावाभिव्यक्ति हुई है। 'भारत' कविता में यदि देश को सामंत-पुत्र से अलगाया गया है, तो 'बेदखली' में 1947 के बाद के भारत को एक ही परिवार की संपत्ति होने से अलगाने की तीव्र अनुभूति है। कवि पूरी कटुता से कहता है—

इसका जो भी नाम है— गुंडों की सल्तनत का
मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूँ

मैं उस पायलट की
चालाक आँखों में चुभता भारत हूँ
हाँ, मैं भारत हूँ चुभता हुआ उसकी आँखों में
अगर उसका अपना कोई खानदानी भारत है
तो मेरा नाम उसमें से अभी खारिज कर दो

पाश ने अपने पहले कविता-संग्रह का नाम रखा— 'लौहकथा'। इस शीर्षक को सार्थक करनेवाली उनकी कविता है-- 'लोहा'। इस कविता में लोहे के बिंब से उन्होंने समाज के वर्ग-विभेद और वर्ग-संघर्ष की स्थिति को उघाड़ा है। एक ओर वे हैं, जो लोहे की बात करते हैं, जिनके पास लोहे की

कुर्सियाँ, बैंकों में लोहे के सेफ हैं, दूसरी ओर लोहे को धौंकनी से ढालकर यह सारी चीजें बनानेवाले मेहनतकश हैं, जो अब लोहे की शक्ति से जाग्रत होकर लोहे को पिस्तौलों, बंदूकों व बमों की शक्ल दे रहे हैं।

लेकिन पाश की अधिकांश कविताएँ सच्चाई और बगावत का ऐलान करती हैं और शोषक वर्गों को एक चुनौती देती हैं कि उनकी पराजय निश्चित है, हर तरह के अत्याचार न उनकी पराजय को रोक सकते हैं और न क्रांति की संभावना मिटा सकते हैं। 'सच' कविता में वे घोषणा करते हैं कि शोषक वर्ग इस सच को स्वीकार करे या न करे, लेकिन अब संघर्ष का सच, युग-सत्य बन रहा है। 'समय कोई कुत्ता नहीं' कविता में पाश कहते हैं कि वे जेल में बंद होकर भी आजाद हैं, जबकि यह पहरेदार सीखचों के बाहर होकर भी कैद है। 'आप हैरान न हों' कविता में शोषक वर्ग को सीधे संबोधित करते हुए पाश करते हें कि वे तो सरफरोश हैं और उनसे हिसाब चुकता करेंगे। इस कविता में पाश ने उन यंत्रणाओं का काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है, जो उन्होंने पुलिस के हाथों 1969 में झेलीं। 'प्रतिज्ञा' कविता में शोषक वर्गों को समाप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा व्यक्त हुई है।

अपने पहले ही संग्रह से पाश अत्यंत संवदेनशीलता से मेहनतकशों के सौंदर्यबोध की अवधारणा की भी बात करते हैं। 'मेरी माँ की आँखें', कविता में पाश अपनी आँखों की सुंदरता के जिक्र के माध्यम से उस औरत की आँखों में दोष की चर्चा करते हैं, जिस गरीबी की मार में अपना ही बेटा बदसूरत जान पड़ता है। 'गले-सड़े फूलों के नाम' कविता में वे ग्राम-संवेदना और नगर-संवेदना में फ़र्क को रेखांकित करते हुए अपनी ग्राम-संवदेना के गौरव को स्थापित करते हैं। 'जेल के खूबसूरत नक्शे-कदम' कविता में कवि जेल की हदों के भीतर से पहाड़ों और खेतों की सुंदरता का बयान करता है।

'लौहकथा' की एक अन्य व्यंग्यात्मक कविता 'संस्कृति की खोज' है, जिसमें एक अंग्रेज महिला मरियम किस्लर, पी-एच.डी. की चर्चा है, जो भारतीय संस्कृति पर खोज कर रही है। इसके माध्यम से विदेशियों द्वारा की जा रही भारत की सांस्कृतिक खोज पर व्यंग्य किया गया है।

इस संग्रह में 'कातिल', 'खुला खत', 'कागजी शेरों के नाम' आदि कविताएँ मध्यवर्ग व बुद्धिजीवियों के नाम संबोधित हैं। उनके खोखलेपन को उद्‌घाटित करते हुए उनसे संघर्ष में कूदकर अपना व्यक्तित्व हासिल करने की अपेक्षा इन कविताओं में व्यक्त हुई है।

1974 में प्रकाशित पाश का दूसरा कविता संग्रह 'उड्डदे बांजाँ मगर' उनकी कविता के कलात्मक विकास की गवाही देता है। संग्रह की पहली

कविता शीर्षक कविता है और अपनी परिपक्वता व ताजगी से फौरन ध्यान आकर्षित करती है। यह कविता एक स्तर पर यदि व्यंग्यात्मक स्वर लिए हुए है तो दूसरे स्तर पर जीवन के कटु यथार्थ का अंकन करती हुई संघर्ष में कूदने की प्रेरणा देनेवाली है। कविता के पहले हिस्से में 'लाल पगड़ीवाले आलोचकों' की चर्चा के माध्यम से सरकार द्वारा कवि-लेखकों से किए जाने वाले सलूक का व्यंग्यात्मक चित्र है तो परवर्ती भाग में बहनों के ब्याह के न उतरनेवाले कर्जों, किसानों के शोषण, गाँव की सुंदर लड़कियों के उजड़ते जीवन के कटु चित्र हैं, लेकिन ये कटु चित्र सिर्फ निराशा में डुबोने के लिए नहीं हैं, बल्कि एक तीव्र प्रभाव डालते हुए इन परिस्थितियों के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।

इस संग्रह में पाश की अनेक चर्चित व महत्त्वपूर्ण कविताएँ संकलित हैं। ऐसी ही कुछ कविताएँ हैं— 'हम लड़ेंगे साथी', 'तूफान कभी मात नहीं खाते', 'पुलिस के सिपाही से', 'काँटे का जख्म' व कुछ गीत।

'हम लड़ेंगे साथी' पाश की बहुचर्चित कविता है, जो अनेक भाषाओं में अनूदित हुई है। इसी कविता से प्रेरित होकर उनकी शहादत के बाद छपे उनके कविता संग्रह का शीर्षक भी 'लड़ांगे साथी' रखा गया है। पाश की कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें एक अभूतपूर्व आशावादी संदेश है। खराब से खराब परिस्थितियों में भी पाश में जीवन की विजय के प्रति अद्‌भुत विश्वास है। यही आशावाद उन्हें गोर्की और आस्त्रोवस्की के बहुत करीब ले जाता है और आस्त्रोवस्की की रचना 'जय जीवन' बरबस ही पाश की कविताओं को पढ़ते हुए ध्यान में आने लगती है। 'हम लड़ेंगे साथी' कविता में पाश हर स्थिति में तब तक संघर्ष करने का प्रण लेते हैं, जब तक 'दुनिया में लड़ने की जरूरत बाकी है।' अनथक संघर्ष करने की प्रेरणा देनेवाली यह कविता विश्व की बेहतरीन कविताओं में जानी जाएगी।

'जन्मदिन' कविता इस संग्रह की आत्म-साक्षात्कार की कविता है। इसमें पाश जेल में अपने कैदी-साथियों के साथ बेड़ियाँ खनकाकर 'जन्मदिन मुबारक' गीत के साथ जीवन की इक्कीसवीं वर्षगाँठ मनाते हैं और अपने नए 'जन्म' की घोषणा करते हैं— सामाजिक क्रांति की चेतना से लैस एक नया जन्म। जेल-जीवन के दौरान लिखी पाश की अनेक कविताएँ इस संग्रह में भी संकलित हैं।

'मुझे चाहिएं कुछ बोल', (जिनसे एक गीत बन सके) कविता द्वारा पाश व्यवस्था के खोखलेपन पर पुनः तीव्र व्यंग्य करते हैं। यह ऐसी अमानवीय व्यवस्था है, जिसमें किसी सृजनात्मक व्यक्ति के लिए सृजन की कोई संभावना नहीं है, जब तक कि वह स्वयं को इस व्यवस्था को बदलने के

संघर्ष से न जोड़े।

'उड्डदे बाजाँ मगर' संग्रह में पाश के दो अत्यंत लोकप्रिय गीत भी संकलित हैं, जो मंच पर खूब गाए गए हैं। इनमें एक गीत 'मज़दूर की झोंपड़ी' को मीनार बनने का संदेश देता है और दूसरा 'सुनहरी प्रभात' के संभावित आगमन की खुशी में आकाश और धरती के नाचने-गाने की अभिव्यक्ति करता है।

'तूफान कभी मात नहीं खाते' शीर्षक कविता इस संग्रह की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कविता है, जिसमें क्रांतिकारी शक्तियों की अस्थायी असफलता पर व्यवस्था के उछलने को चुनौती देते हुए कहा है कि 'हवा फिर दिशा बदलेगी और तूफान कभी मात नहीं खाएँगे।'

'पुलिस के सिपाही से' कविता में फिर वर्ग-चेतना का उद्घोष है। पुलिस के सिपाही को किसान-मज़दूर का बेटा समझकर पाश ने उसे अपना वर्ग पहचानने और उसके लिए बंदूक उठाने का संदेश दिया है।

'सेंसर होनेवाले खत का दुखांत' में जहालत से भरे पुलिस-अधिकारियों पर फिर व्यंग्य है, जो व्यक्तिगत पत्रों में भी अर्थ के अनर्थ करते हैं। 'काँटे का जख्म' कविता में गाँव के साधारण आदमी के जीवन की दुखांत गाथा है तो 'जहाँ कविता ख़त्म होती है' गाँव के अनपढ़ लड़कों को संबोधित है, जिसमें उनसे वहाँ से ज़िंदगी शुरू करने का संदेश है, 'जहाँ कविता ख़त्म होती है...'

वास्तव में 'उड्डदे बाजाँ मगर' की 41 कविताओं ने पाश को पंजाबी कविता के इस दौर के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित किया और उसका यह दर्जा अभी तक कोई और पंजाबी कवि पार नहीं कर पाया है। न केवल पंजाबी में ही, बल्कि अखिल भारतीय स्तर पर भी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में पाश को पहचाना जाने लगा था, हालाँकि उनकी कुछ ही कविताएँ अनूदित होकर देश के अन्य हिस्सों तक पहुंची थीं।

पाश का तीसरा कविता संग्रह 'साडे समियाँ विच' (हमारे समयों में) समकालीन जीवन का काव्यात्मक किंतु यथार्थ आकलन तो है ही, पाश की कला के भी और अधिक विकास का सूचक है। 1978 में प्रकाशित इस संग्रह में उनकी अपेक्षाकृत लंबी 35 कविताएँ संकलित हैं। संग्रह की अंतिम कविता 'कामरेड से बातचीत' छह खण्डों में लिखी पाश की अब तक प्रकाशित सबसे लंबी कविता है। मुक्तिबोध की तरह पाश की काव्य-संवेदना भी अब लंबी कविताओं के रूप में अभिव्यक्ति पाने की ओर बढ़ रही थी, लेकिन आतंकवादी हाथों ने अल्पायु में ही पाश की हत्या करके पंजाबी-संस्कृति के संभावित मुक्तिबोध को छीन लिया। इस हत्या ने एक

बार फिर यह प्रमाणित कर दिया है कि फासिस्ट विचारधारा और इसे माननेवाले ही साहित्य-संस्कृति के सबसे बड़े शत्रु हैं।

'साडे समियाँ विच' की भूमिका में पाश ने कविता में संबोधन-शैली की प्रशंसा करते हुए कालिदास के प्रभाव को स्वीकार किया है। इसके साथ ही कमलादास, नेरूदा, नाज़िम हिकमत का प्रभाव भी उन्होंने स्वीकार किया है।

'उड्डदे बाजाँ मगर' की अंतिम कविता अपने गाँव के अनपढ़ लड़कों से संबोधित थी— 'जहाँ कविता ख़त्म होती है' और 'साडे समियाँ विच' की पहली कविता फिर गाँव के लड़कों से संबोधित है— 'जहाँ कविता ख़त्म नहीं होती'। इस कविता में मनुष्य की सामाजिक चेतना के विकास के साथ-साथ उसके भीतर पैदा होती दुखों की अनुभूति की चर्चा है—

पंद्रहवें के बाद
हर वर्ष श्मशान से उठती भाप का गुब्बार होता है

कवि महसूस करता है—
मैं— जो सिर्फ एक आदमी बनना चाहता था
यह क्या बना दिया गया हूँ?

लेकिन संग्रह की भूमिका स्वरूप लिखी कविता 'इनकार' में पाश की स्पष्ट उद्घोषणा है कि वे अपने वर्ग से जुड़े हैं और जुड़े रहेंगे और व्यवस्था के किसी भी 'सौंदर्यबोध' को स्वीकार नहीं करेंगे।

'मैं अब विदा लेता हूँ' नामक कविता पाश की संभवतः तीव्रतम कोमल संवेदना की कविता है, जिसमें अपनी मृत्यु के दस वर्ष पहले ही उन्होंने अपनी सामाजिक भूमिका स्पष्ट करते हुए अपनी अंतिम परिणति स्पष्ट कर दी थी। लेकिन साथ ही यह भी कि उनमें जीवन की कैसी उत्कट लालसा थी। न केवल स्वयं जीने की उत्कट लालसा, बल्कि वे अपने पूरे वर्ग के लिए, अपने मित्रों के लिए भी ऐसी ही उत्कट जीवन-लालसा की कामना करते थे। कविता की अंतिम पंक्तियाँ पूरी शिद्दत के साथ इस भावना को व्यक्त करती हैं—

तुम यह सभी कुछ भूल जाना मेरी दोस्त
सिवाय इसके
कि मुझे जीने की बहुत लालसा थी
कि मैं गले तक ज़िंदगी में डूबना चाहता था।

मेरे भी हिस्से का जी लेना मेरी दोस्त
मेरे भी हिस्से का जी लेना।

सच्चे क्रांतिकारियों में ही ऐसी जीवन-कामना होती है और वही अपना जीवन दूसरों के जीने के लिए छोड़ जाते हैं। पाश की यह कामना उनके साथियों-प्रशंसकों को उन्हीं की तरह जीकर पूरी करनी है।

'प्रतिबद्धता' कविता में वे ज़िंदगी और समाजवाद के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं और झूठ-मूठ के दिखावों का विरोध। 'तुम्हें पता नहीं' कविता में वे अपने कवि-बिंब का जिक्र करते हुए कहते हैं कि उन्हें कविता में 'किसी मुजरे में घुसे आवारा कुत्ते' की तरह समझा जाता है।

'युद्ध और शांति' इस संग्रह की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दार्शनिक कविता है। इस कविता में पाश युद्ध और शांति के प्रश्न पर काव्यात्मक ढंग से विचार करते हुए यह स्थापित करते हैं कि वास्तव में युद्ध, यानी संघर्ष ही जीवन की वास्तविकता है और शांति एक तरह से जीवन से पलायन है। शांति के वे कई ऐसे बिंब सृजित करते हैं जो बिल्कुल नए व कुछ हद तक चौंकानेवाले भी हैं और युद्ध के भी ऐसे भावभीने बिंब सृजित करते हैं कि हम जीवन-संघर्ष में कूदने की प्रेरणा ग्रहण करने लगते हैं। 'युद्ध और शांति' उनकी क्लासिक रचना बनने की क्षमता रखती है।

'हमारे समयों में' कविता भी संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता है, जिसमें कवि ने समकालीन समाज की राजनीतिक स्थिति का दु:ख-भरा काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कम्युनिस्ट पार्टियों का क्रांति-पथ छोड़कर संसद में जा भटकना इन शब्दों में व्यक्त हुआ है—

यह शर्मनाक हादसा हमारे ही साथ होना था
कि दुनिया के सबसे पवित्र शब्दों ने
बन जाना था सिंहासन की खड़ाऊँ
मार्क्स का सिंह-जैसा सिर
दिल्ली की भूल-भुलैयों में मिमियाता फिरता
हमें ही देखना था
मेरे यारो, यह कुफ्र हमारे ही समयों में होना था।

'कामरेड से बातचीत' उक्त संग्रह की सबसे लंबी व अंतिम कविता है, जिसमें उन्होंने कामरेड से संबोधित होते हुए कम्युनिस्ट आंदोलन के सबल व निर्बल दोनों ही पक्षों की चर्चा की है। कम्युनिस्ट आंदोलन व क्रांति के प्रति कवि की सच्ची भावना व चिंता इस कविता के हर शब्द से झलकती

है। पाश की कविताओं का अब तक का अंतिम संग्रह 'संपूर्ण पाश-काव' पाश की शहादत के बारह साल बाद प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में पिछले तीन संग्रहों से चुनी कविताओं के साथ-साथ 100 ऐसी कविताएँ भी संकलित हैं जो अभी तक या तो अप्रकाशित थीं या केवल पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुई थीं।

इन कविताओं में उनकी चार कविताएँ पंजाब की आतंकवाद की स्थिति का सबसे सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज हैं। ये कविताएँ हैं— 'धर्मदीक्षा के लिए विनयपत्र', 'कुएँ', 'बेदखली के लिए विनयपत्र' तथा 'सबसे खतरनाक'।

'धर्मदीक्षा के लिए विनयपत्र' कविता में पाश ने भिंडरावाले की फासिस्ट विचारधारा पर आधारित खालिस्तानी आंदोलन के अमानवीय पक्ष को एक माँ की गुहार के माध्यम से उभारा है। धर्मगुरु से माँ अपने बेटे की दीक्षा व रक्षा चाहती है, क्योंकि 'आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं', क्योंकि धर्मगुरु की हुंकार ने 'अच्छे-खासे परिवारों को बाड़े में बदल' दिया है। एक तीव्र तिलमिला देनेवाले व्यंग्य के माध्यम से पाश ने भिंडरावाले-विचारधारा व आंदोलन की वास्तविकता इस कविता से उघाड़ी है और यह कविता तथाकथित 'खालिस्तान' समर्थक आतंकवादियों की आँख में काँटे की तरह चुभती भी रही। 1982 में पाश ने 'हाक' हस्तलिखित पत्रिका में 'कुएँ' नामक कविता प्रस्तुत की। इस कविता के अपेक्षाकृत अमूर्त्त बिंबों द्वारा उन्होंने 'खालिस्तानी' आंदोलन के प्रतिक्रियावादी पक्ष को उभारा।

लेकिन साथ ही साथ नवंबर '84 के सिख-विरोधी दंगों से उपजे सात्त्विक क्रोध में पाश ने 'बेदखली के लिए विनयपत्र' जैसी सशक्त मानवीय रचना भी की, जिसमें सत्ता द्वारा निर्दोष सिखों की हत्या को उघाड़ते हुए एक 'खानदानी' भारत से अपना नाता तोड़ने की काव्यात्मक घोषणा की गई है।

पाश की अंतिम प्रकाशित कविता थी— 'सबसे खतरनाक'। इस कविता में पाश ने शोषण, दमन और अत्याचार से भी अधिक खतरनाक माना है— इंसान का प्रतिरोध करने, जीने और उसके सपनों के मर जाने की स्थिति को। आकस्मिक नहीं कि पाश ने स्वयं अपने बलिदान द्वारा इस 'सबसे खतरनाक' स्थिति को भेद दिया।

संभवतः पाश की कुछ अप्रकाशित कविताएँ कभी इधर-उधर बिखरी हुई हों, लेकिन अब तक प्रकाशित कविताओं से ही उनका कवि बिंब पूरी तरह स्पष्ट है। अपनी काव्य-यात्रा के अंतिम दौर में पाश ने संबोधन-शैली को अधिक अपनाया और इस शैली में अनेक सशक्त रचनाएँ कीं।

23 मार्च, 1988 को पाश भी अपने प्रिय शहीद भगतसिंह के रास्ते

पर चले गए और उक्त ऐतिहासिक तारीख को उन्होंने राजनीति व संस्कृति के संगम का दर्जा भी दिला दिया। भगतसिंह 23 मार्च, 1931 को देश के स्वतंत्रता-आंदोलन की बलिवेदी पर शहीद हुए थे। भगतसिंह मूलतः एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता थे, यद्यपि उनकी साहित्यिक समझ अत्यधिक साफ थी। पाश मूलतः एक सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता थे, एक कवि थे, लेकिन उनकी राजनीतिक समझ बहुत साफ थी। भगतसिंह और पाश की एक ही दिन से जुड़ी शहादत उन्हें पंजाब की परंपरा में एक साथ ले आई है। यद्यपि दोनों की शहादत में 57 वर्ष का अंतर है, लेकिन दोनों ही मानवतावादी व क्रांतिकारी विचारों के लिए शहीद हुए। पाश की शहादत ने यह सिद्ध कर दिया कि मानव-मूल्यों के व्यापक संघर्ष में संस्कृतिकर्मी भी वैसे ही योद्धा हैं, जैसे राजनीतिक कार्यकर्त्ता। राजनीति व संस्कृति को मानव-मूल्यों के संघर्ष में अलगाया नहीं जा सकता। 23 मार्च के दिन भगतसिंह और पाश को एक साथ याद करते हुए, यही संदेश हमारे सामने बार-बार आएगा।

लौहकथा

(1970)

भारत

भारत—
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं

इस शब्द के अर्थ
खेतों के उन बेटों में हैं
जो आज भी वृक्षों की परछाईयों से
वक़्त मापते हैं
उनके पास, सिवाय पेट के, कोई समस्या नहीं
और वह भूख लगने पर
अपने अंग भी चबा सकते हैं
उनके लिए ज़िंदगी एक परंपरा है
और मौत के अर्थ हैं मुक्ति
जब भी कोई समूचे भारत की
'राष्ट्रीय एकता' की बात करता है
तो मेरा दिल चाहता है—
उसकी टोपी हवा में उछाल दूँ
उसे बताऊँ
कि भारत के अर्थ
किसी दुष्यंत से संबंधित नहीं
वरन खेतों में दायर हैं
जहाँ अन्न उगता है
जहाँ सेंध लगती है...

बेदावा[1]

तुम्हारे पुरखों के नशे में
वे तुम्हें बेदावा लिख गए हैं
माछीवाड़ा [2]
उनके चेहरों पर उग आया है
और प्रतिदिन जुएँ
वहाँ ज़फरनामें लिखती रहती हैं
वे नौ महीनों में
दो सौ सत्तर साहबज़ादों का अवतार करते हैं
और कोई न कोई चमकौर [3] ढूँढ़कर
उन्हें शहीद का दर्जा दिला देते हैं
औरंगजेब की शैतान रूह
लाल किले के शिखर
अशोक चक्र में प्रवेश कर गई है
और उन्होंने संयुक्त मोर्चे के सामने
दिल्ली की वफादारी की सौगंध उठाई है
यदि वे दक्षिण को जाएँ भी
तो शिवाजी को नहीं
शिवाजी गणेशन को संगठित करने जाते हैं
तलवार उनकी कमर में
सफ़र भत्ता बनकर गड़ती है
उन्होंने देश-भर की चिड़ियों को
अपराधी घोषित कर दिया है
लेकिन गुरु! वे सिंह कौन हैं
जिन्होंने बेदावा नहीं लिखा

और आज भी हर जेल

हर पूछताछ केंद्र को
सरहिंद की दीवार
और आनंदपुर का क़िला समझते हैं
वे बाढ़ आई सिरसा [4] में डुबकी लगा
तुम्हारे ग्रंथ निकालने गए हैं
हे गुरु! वे सिंह कौन हैं?
जिन्होंने बेदावा नहीं लिखा।

[1. गुरु गोविंदसिंह के चालीस शिष्य उन्हें छोड़ गए थे, छोड़ने के कर्म को बेदावा कहा गया है। 2. पंजाब का कस्बा , जहां से वे छोड़कर गए 3. पंजाब में एक और जगह, जहाँ गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्र शहीद हुए 4. कहा जाता है कि गुरु गोविंदसिंह की अनेक रचनाएँ सिरसा नदी की बाढ़ में डूब गई थीं।]

लोहा

आप लोहे की कार का आनंद लेते हो
मेरे पास लोहे की बंदूक है

मैने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो
लोहा जब पिघलता है
तो भाप नहीं निकलती
जब कुठाली उठानेवालों के दिलों से
भाप निकलती है
तो लोहा पिघल जाता है
पिघले हुए लोहे को
किसी भी आकार में
ढाला जा सकता है

कुठाली में देश की तकदीर ढली होती है

यह मेरी बंदूक
आपके बैंकों के सेफ;
और पहाड़ों को उल्टानेवाली मशीनें,
सब लोहे के हैं
शहर से वीराने तक हर फ़र्क
बहन से वेश्या तक हर एहसास
मालिक से मुलाजिम तक हर रिश्ता
बिल से कानून तक हर सफ़र
शोषणतंत्र से इन्कलाब तक हर इतिहास
जंगल, कोठरियों व झोंपड़ियों से लेकर इंटेरोगेशन तक
हर मुकाम सब लोहे के हैं

लोहे ने बड़ी देर इंतजार किया है
कि लोहे पर निर्भर लोग
लोहे की पत्तियाँ खाकर
ख़ुदकशी करना छोड़ दें
मशीनों में फँसकर फूस की तरह उड़नेवाले
लावारिसों की बीवियाँ
लोहे की कुर्सियों पर बैठे वारिसों के पास
कपड़े तक ख़ुद उतारने के लिए मजबूर न हों

लेकिन आखिर लोहे को
पिस्तौलों, बंदूकों और बमों की
शक्ल लेनी पड़ी है
आप लोहे की चमक में चुँधियाकर
अपनी बेटी को बीवी समझ सकते हैं,
(लेकिन) मैं लोहे की आँख से
दोस्तों के मुखौटे पहने दुश्मन
भी पहचान सकता हूँ
क्योंकि मैंने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो।

सच

आपके मानने या न मानने से
सच को कोई फ़र्क नहीं पड़ता
इन दुखते हुए अंगों पर सच ने एक जून भुगती है
और हर सच जून भुगतने के बाद
युग में बदल जाता है
और यह युग अब खेतों और मिलों में ही नहीं
सेना की पाँतों में भी विचर रहा है
कल जब यह युग
लालकिले पर परिणाम का ताज पहने
समय की सलामी लेगा
तो आपको सच के असली अर्थ समझ आएँगे
अब हमारी उपद्रवी जाति को
चाहे इस युग की फितरत कह लें
यह कह देना
कि झोंपड़ियों में फैला सच
कोई चीज नहीं
कितना सच है?
आपके मानने या न मानने से
सच को कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

दो और दो तीन

मैं सिद्ध कर सकता हूँ—
कि दो और दो तीन होते हैं
वर्तमान मिथिहास होता है

इंसानी शक्ल चमचे-जैसी होती है

आप जानते हैं—
अदालतों, बस अड्डों और पार्कों में
सौ-सौ के नोट घूमते फिरते हैं
जो डायरियाँ लिखते, चित्र खींचते
और रिपोर्टें भरते हैं
कानून-रक्षाकेंद्र में
बेटे को माँ पर चढ़ाया जाता है
खेतों में 'डाकू' दिहाड़ी पर काम करते हैं
माँगे माने जाने की घोषणा
बमों से की जाती है
अपने लोगों से प्यार का अर्थ
'दुश्मन देश' का एजेंट होना होता है
और ज़्यादा से ज़्यादा गद्दारी का तमगा
बड़े से बड़ा रुतबा हो सकता है
तो—
दो और दो तीन भी हो सकते हैं
वर्तमान मिथिहास हो सकता है
इंसानी शक्ल चमचे-जैसी भी हो सकती है।

संदेश

वाशिंगटन
यह जलावतन अपराधियों का झुंड
आज तुम्हें कलंकित करने चला है
यह उन डकैतों से भी बदनाम
और भगोड़ी जुंडली है
जिन्होंने तीन सदियों तक हमारे खेतों का गर्भपात किया
और यह उनके ही शोषण का प्रमाण है

कि मेरी बहिनें आज लगभग नंगी
कालिज में पढ़ने जाती हैं
वे तो हमारी लुंगियाँ तक खोल ले गए हैं
वाशिंगटन !

इन्होंने तुम्हें धब्बा लगाने की क़सम खाई है !
कोरिया, वियतनाम या इसरायल तो
सिर्फ़ समाचारपत्रों के कालम हैं
वाशिंगटन तुम तो जानते हो
हमने किस तरह मकदूनिया से चला
वहशत का समुद्र रोका था
हमारे तो फ़कीर भी विश्व विजय पर निकले हुओं को
धूप छोड़कर खड़े होने का आदेश देते हैं
रोडेशिया[1], वियतनाम और हक के हर संग्राम में
मेरा लहू आबाद है—
लेकिन यह लिंकन के हत्यारे
हब्शियों का व्यापार करने चले हैं
इनकी मौत इन्हें हमारे घर की
दहलीजों के अंदर ले आई है
वाशिंगटन !
इनके गोदान के लिए गाएँ भेज...

[1. अब जिंबाब्वे]

मेरी माँ की आँखें

जब एक लड़की ने मुझसे कहा—
मैं बहुत सुंदर हूँ
तो मुझे उसकी आँखों में दोष लगा था
मेरी जानिब तो वे सुंदर थे

जो मेरे गाँव में वोट माँगने
या उद्‌घाटन की रस्म के लिए आते हैं

एक दिन
जट्‌टू की दुकान से मुझे सूँघ मिली
कि उनके सिर का सुनहरी ताज चोरी का है...
मैंने उसी दिन गाँव छोड़ दिया
मेरी विश्वास था कि यदि ताजोंवाले चोर हैं
तो फिर सुंदर कोई और है ....

शहरों में जगह-जगह मैंने असुंदरता देखी
प्रकाशन-गृहों में, कॉफी हाऊसों में
दफ्तरों और थानों में—
और मैंने देखा, असुंदरता की यह नदी
दिल्ली के गोल पर्वत से रिसती है
और उस गोल पर्वत में सुराख करने के लिए
मैं असुंदरता में घुसा
असुंदरता के साथ लड़ा
और कई लहू-लुहान वर्षों में से गुज़रा
और अब मैं चेहरे पर युद्ध के निशान लेकर

दो पल के लिए गाँव आया हूँ
और वही चालीस वर्ष की लड़की
अपने लाल को बदसूरत कहती है
और मुझे फिर उसकी आँखों में दोष लगता है।

हर बुलावे पर मरते रहना

जब मैं पैदा हुआ
तो जीने की कसम खाकर पैदा हुआ
और हर बार जब मैं फिसलकर गिरा

मेरी माँ लानते भेजती रही!

कोई साहिबाँ [1] मेरे क़ायदे को गलत पढ़ती रही,
अक्षरों पर गिराकर स्याही
तख़्ती मिटाती रही
हर जश्न पर

मेरी कामयाबी के हार
उसे पहनाए गए
मेरी गली के मोड़ तक
आकर वह लौट जाती रही

मेरी माँ का वचन है
हर बुलावे पर मरते रहना
तेरे ज़ख़्मी जिस्म को
बक्की [2] बचाती रहेगी
जब भी मेरे सिर पर
कोई तलवार चमकी है
मैं केवल मुस्कराया हूँ
और मुझे नींद आ गई है
जब मेरी बक्की को
मेरी लाश के टुकड़े
उठाने की सूझ आएगी
तब मैं मिर्ज़ा नहीं रहूँगा

[1. पंजाब की प्रसिद्ध प्रेम-कथा 'मिर्ज़ा-साहिबाँ' की नायिका 2. मिर्ज़ा की घोड़ी।]

यह कैसी मुहब्बत है दोस्तो

सघन बदबू में दीवारों पर लगी काई
और छत पर लगा मकड़ी का जाला देखकर

प्रेमिका का चेहरा बहुत याद आता है
यह कैसी मुहब्बत है दोस्तो?
कवि कातिल हैं, किसान डाकू हैं
ताज़ीराते हिंद का फरमान है—
गेहूँ खेतों में सड़ने दें
नज़्में इतिहास न बन पाएँ
शब्दों का गला घोंट दो
कल तक यह दलील बहुत दिलचस्प थी
इस तीन रंग की जिल्द पर
नया कागज चढ़ा लें—
लेकिन एवरेस्ट पर चढ़ना
मुझे अब दिलचस्प नहीं लगता
मैं हालात से समझौता कर
साँस घसीटना नहीं चाहता
मेरे यारो!
मुझे इस क़त्लेआम में शामिल हो जाने दो

गले-सड़े फूलों के नाम

हम तो गाँवों के निवासी हैं
तुम शहर-निवासी तो सड़कों वाले हो।
आप क्यों रेंग-रेंगकर चलते हो?
हमारा दिलबहलाव तो हाट बाज़ार है
आप क्लब-सिनेमा वाले
हमसे पहले बूढ़े कैसे हो जाते हो?
हमारी दौड़ तो काले महर की मढ़ी तक
या तुलसी सूद के टोने तक है
आप तो सुना चाँद की बातें करते हो
आप हमसे पहले क्यों मर जाते हो?
हमने कलेजा काट-काटकर भी उ.फ न की

आप जो रंग-बिरंगे झंडे उठाए फिरते
खाते-पीते मौत पर दुलत्तियाँ झाड़ते हो
यह चिल्ल-पों किस बात की मचाते हो?

देखना अब
यह प्याज़ के साथ सूखी रोटी चबानेवाले
आपके शहर की सड़कें-कमरे निगल जाने के लिए
आ पहुँचे हैं
यह आपके डाइनिंग टेबल
और ट्रे तक निगल जाएँगे
जब हमारी इज़्जत को सेंधें लगती थीं
तो हम अनपढ़, ग्रामीण, मुँह के गूँगे थे
आपकी कतरनी-सी जीभ कॉफी-हाऊस में क्या कहती थी
आप पढ़ों-लिखों को क्या हुआ था
हम आपकी ख़ाहिश का अपमान नहीं करेंगे
हम आपको आदर सहित
समेत आपके अस्तित्ववाद के
बर्छी की नोंक पर टाँगकर
चाँद पर पहुँचा देंगे
हम तो सीधे-सादे ग्रामीण बंदे हैं
हमारे पास 'अपोलो' है न 'लूना' है।

जब बगावत खौलती है

अँधेरी, काली अँधेरी रातों में
जब एक पल दूसरे पल से सहमता है, सिहरता है
चौबारों की रोशनी तब,
खिड़कियों से कूदकर आत्महत्या कर लेती है
इन शांत रातों के गर्भ में
जब बगावत खौलती है,
रोशनी, बेरोशनी भी क़त्ल हो सकता हूँ मैं।

खूबसूरत पैड दीवारें जेल की

शब्दों की आड़ लेकर
मैंने जब भी अर्थों का दुखांत ओझल किया है
बहुत पछताया हूँ
मैंने जिस धरती पर खड़े होकर
धरती के संगीत की सौगंध खाई थी
उस पर कितनी बार फिसलकर गिरा हूँ
मुझे सूख गए वृक्षों का श्राप मिला है
और
मैंने बार-बार सूली और बहिश्त को
दो सौतनें माना है
जिन्हें एक ही पलंग पर गर्भवती बनाते
मेरा बदन सिमटता जाता है
लेकिन मेरा आकार और निखरता है
ठीक
मेरी क़लम कोई रंगसाज़ की कड़ाही नहीं है
मैं तो सड़कों पर चलता हुआ
इतना बिखर गया हूँ
कि मेरे अपाहिज जिस्म को
याद भी नहीं आता
कि मेरा कौन-सा अंग वियतनाम में
और कौन-सा अफ्रीका के किसी मरुस्थल में
छूट गया है?
मैं दिल्ली के किसी कॉफी-हाऊस
में बैठा हूँ या आंध्र के जंगलों में?
बार-बार बीतते पलों के साथ
मैं अपने अस्तित्व को छूता हूँ
मेरी छः कविताओं की माँ

पिछले इतवार मेरी ही परछाईं के साथ
भाग गई है
और मैं आवाज़ें पकड़ने की कोशिश में
कितना दूर निकल आया हूँ
मेरे नक़्श पंचांग की
गुज़री तारीखें बनकर रह गए हैं
बारी-बारी से नेपोलियन, चंगेज़ खाँ और सिकंदर
मेरे में से गुज़र गए हैं
अशोक और गौतम बेबाक़ देख रहे हैं
बेपर्द पत्थर का सोमनाथ
जो मैं एवरेस्ट पर खड़ा हो देखता हूँ
तिड़का हुआ ताजमहल
पीतल का हरि मंदिर
और अजंता खँडहर-खँडहर
और मैं सोचता हूँ
कुतुब की पाँच मंज़िलें जो बाकी हैं
क्या आत्महत्या के लिए काफ़ी हैं ?
लेकिन आख़िर
मुझे मानना होता है
कि जिस समय मैंने जुपिटर के बेटे
और अरस्तू के शिष्य से
धूप छोड़कर खड़ा होने के लिए कहा था
तो मेरी कमर में सिर्फ़ जाँघिया था
इसीलिए मैंने
अब खूबसूरत पैड झुलसा दिए हैं
और क़लम संगीन बनाकर
जेल की दीवारों पर लिखना चाहता हूँ
और यह सिद्ध करने में व्यस्त हूँ
कि क्षितिज के पार भी
पहाड़ होते हैं
जिनकी ढलानों पर
किरनें भी, क़लमें भी
जड़ी जा सकती हैं।

युग पलट

आधी रात में
मेरी कँपकँपी सात रजाइयों से भी न रुकी
सतलुज मेरे बिस्तर पर उतर आया
सातों रजाइयाँ गीलीं
बुख़ार एक सौ छः, एक सौ सात
हर साँस पसीना पसीना
युग को पलटने में लगे लोग
बुख़ार से नहीं मरते
मृत्यु के कंधों पर/जानेवालों के लिए
मृत्यु के बाद ज़िंदगी का सफ़र शुरू होता है
मेरे लिए जिस सूर्य की धूप वर्जित है
मैं उसकी छाया से भी इनकार कर दूँगा
मैं हर खाली सुराही तोड़ दूँगा
मेरा खून और पसीना मिट्टी में मिल गया है
मैं मिट्टी में दब जाने पर भी उग आऊँगा।

अब मेरा हक बनता है

मैंने टिकट खरीदकर
आपके लोकतंत्र का नाटक देखा है
अब तो मेरा प्रेक्षागृह में बैठकर
हाय-हाय करने और चीखें मारने का
हक बनता है

आपने भी टिकट देते समय
टके तक की छूट नहीं दी
और मैं भी अपनी पसंद की बाजू पकड़
गद्दे फाड़ दूँगा
और पर्दे जला डालूँगा।

समय कोई कुत्ता नहीं

फ्रंटियर न सही, ट्रिब्यून पढ़ें
कलकत्ता नहीं, ढाका की बात करें
आर्गेनाइजर और पंजाब केसरी
की कतरनें लाएँ
और मुझे बताएँ
यह चीलें किधर जा रही हैं?
कौन मरा है?
समय कोई कुत्ता नहीं
कि जंजीर पकड़कर जिधर चाहे खींच लें
आप कहते हैं
माओ यह कहता है, माओ वह कहता है
मैं पूछता हूँ, माओ कौन है कहनेवाला?
शब्द बंधक नहीं हैं
समय ख़ुद बात करता है
पल गूँगे नहीं हैं

आप बैठें रैंबल में
या प्याला चाय का रेहड़ी से पिएँ
सच बोलें या झूठ—
कोई फ़र्क नहीं पड़ता
चाहे चुप की लाश भी छलाँग से लाँघ जाएँ
और ऐ हकूमत!

अपनी पुलिस से पूछकर यह बता
कि सींखचों के भीतर मैं कैद हूँ
या सींखचों के बाहर यह सिपाही?
सच ए.आई.आर.[1] *की रखैल नहीं*
समय कोई कुत्ता नहीं।

1. ऑल इंडिया रेडियो।

ज़हर

आप कैसे कह सकते हैं
कि यह ज़हर है और यह ज़हर नहीं
ज़हर से तो न सिगरेट मुक्त है
न पान
न कानून, न कृपाण
ज़हर के लेबल को
सचिवालय पर लगाएँ या विश्वविद्यालय पर
ज़हर ज़हर है
और ज़हर को ज़हर काटता है

भूमि आंदोलन तो घर की बात है
यह कानू सान्याल क्या चीज़ है?
जवानी तो जतिंद्र या बबिता की
यह उत्पल दत्त क्या हुआ?
यह नाट्य कला-केन्द्र किस काम का?
ज़हर तो कीट्स ने खाया था
यह दर्शन खटकड़ क्या खाता है?

चीन से कहो
आणविक धमाके न करे

इस तरह तो पवित्र वायु में
ज़हर फैलता है
और हाँ, पोलिंग के दिन इस बार
अफ़ीम की जगह खालिस ज़हर बाँटो
ज़हर तो बढ़ता जाता है—
और नर्स!
इस प्वायज़न स्टोर को
हमें क्या धूप देनी है?
जाओ एक-एक गोली
'पाश' और 'संत' (संधू)[1] को दे आओ।

[1. पंजाबी कवि और पाश के मित्र।]

अर्थों का अपमान

आपने जानबूझकर अर्थों का अपमान किया है
आवारा शब्दों का इल्जाम
अब किसे देंगे?
मुझसे यह वृक्ष पूछते हैं
कि उस सूरज को क्या कहें
जोकि गर्म न हो
जिसका रंग लाल न हो!
मैं वृक्षों की ओर देखता हूँ
हवा के रंग गिनता हूँ
और ऋतु का माप लेता हूँ
और मुझसे फिर सूरज को निर्दोष नहीं कहा जाता
मैं सूरज के लिए
गुस्ताख शब्दों को स्वयंवर में बिठाता हूँ
आप समझेंगे
मैंने चोटी पर खड़े हो खड्ड में छलाँग लगाई है

असल बात दूसरी है
मैंने तो खड्डों के अर्थ बदले हैं
हवा को पींग माना है
और पर्वत को और ऊँची छलाँग लगाने की जगह माना है
मैंने आपके लिए आत्महत्या के अर्थ बदले हैं
मेरे साथी,
आपके लिए ज़िंदगी के अर्थ बदलेंगे
आपने 'गर मरते वक़्त
ज़िंदगी को जान भी लिया
आपको कौन मानेगा?
आपको कौन छोड़ेगा
जिन्होंने जानबूझकर
अर्थों का अपमान किया है।

वक़्त की लाश

इन्होंने पतझड़ के आख़िरी दिन
बुक्कल में संभाल लिए हैं
और अब यदि यह वसंत की बात भी करते हैं
तो जैसे शब्दों के साँस टूटते हों...

जैसे नशेड़ी तड़प गया हो—
और इनके पड़ोस में
शैतान सिरफिरे छोकरे
इतिहास की दीवारों पर
कुछ लिखने में मसरूफ़ हैं
वे उन्हें विष लगते हैं
जैसे कोई बारहवें वर्ष
ऋषि की समाधि भंग कर दे
जैसे सुहाग की सेज पर मेहमान सो जाएँ

इनके पास उसका दिया बहुत-कुछ है
यह डिग्रियों की पटरी पर सो सकते हैं
और अलंकारों के ओवरकोट पहनते हैं
उनके लिए ज़िंदगी के अर्थ सिफ़ारिश हैं
कैद को वे कोकाकोला की तरह पीते हैं
और हर आज को कल में बदलकर खुश होते हैं
ये रात को सोते समय
पायजामों-शलवारों की गाँठें देखकर सोते हैं
और सुबह जब ये उठते हैं
तो बकरी की तरह कमज़ोर
जैसे वक़्त की लाश गंधा गई हो
जैसे दही बास गया हो
जब ये अपने-आपको
मृत पड़ा देखते हैं
तो ज़िंदगी को याद में
लाने के लिए तिकड़म लड़ाते हैं
जैसे कोई उंगलियों पर हासिल गिनता है
जैसे कोई रेंगना सीखने से पहले की
उम्र को याद करता है।

देशभक्त

(प्यारे चंदन को समर्पित)

एक अफ्रीकी सिर
चेग्वेरा को नमस्कार करता है
आरती कहीं भी उतारी जा सकती है...
अंतरिक्ष में... पृथ्वी पर
क्यूबा में... बंगाल में
समय स्वतंत्र रूप में कोई चीज़ नहीं

समय को अर्थ देने के लिए
पल जिए जाते हैं, वर्ष बिताए जाते हैं...
भिवंडी और श्रीकाकुलम् में फ़र्क समझा जाता है
मैं सूर्य से मुकरा, घास से मुकरा
कुर्सी से, मेज से
और इसीलिए मैंने लॉन की धूप में बैठकर
चाय नहीं पी
बंद कमरे की दीवारों पर फायर किए हैं
....

यह भारत है—
जो छोटे-से ग्लोब पर एशिया की पूँछ बनकर
लटका है
जिसकी शक्ल पतंगे जैसी है
और जो पतंगे की तरह जल जाने के लिए व्याकुल है
और यह पंजाब है—
जहाँ न कोमल दूब बिछी है
न फूलों-भरे वृक्ष
चैत आता है, लेकिन उसका रंग शोख नहीं होता...
उदास शामों के साथ टकराकर
ज़िंदगी का सच कई बार गुज़रा है
लेकिन हर बार सहनशीलता का मुखौटा पहनने से पहले
मैं हर दिशा के क्षितिज के साथ टकरा गया हूँ
चाँद जब गोवा के रंगीन तटों पर
या कश्मीर की जीवंत वादी में
चारों ओर सुस्ताया पड़ा होता है
तब वे पल होते हैं
जब मैं ऊंचे हिमालयवाली
अपनी पितृभूमि पर बहुत मान करता हूँ
जिसने हम पहाड़ी पत्थरों-जैसे अनगिन लोगों को पैदा किया
और पत्थरों की तरह ही जीने के लिए छोड़ दिया
और तब मुझे वह ढिठाई
जिसका नाम ज़िंदगी है
रूठी हुई प्रेमिका की तरह प्यारी लगती है

और मुझे लाज आती है
कि मैं घोंघे की तरह बंद हूँ
जबकि मुझे अमीबा की तरह फैलना चाहिए।

मैं कहता हूँ

बहुत-से लोग कहते हैं—
बड़ा कुछ और कहने को है
बहुत कुछ आगे तय करने को है
जैसे बात शब्दों के साथ नहीं कही जाती
जैसे बाट कदमों के साथ खप नहीं जाती
बहुत-से लोग कहते हैं—
अब कहने के लिए कुछ भी बाकी नहीं
तय करने के लिए कुछ भी बचा नहीं
जैसे शब्द नपुंसक हो गए हों
जैसे कदम बाँझ हो गए हों
तो मैं कहता हूँ
सफ़र की, इतिहास की बात न करो
मुझे अगला कदम रखने के लिए ज़मीन दो।

तेरा मोल, मेरा मोल

एक हवा का रास्ता लाँघने के लिए
बहुत देर मुझे जिस्म बाँहों में दबाए रखना पड़ता है
अपने करम की लाश

रोज़ ही मैं चाहे-अनचाहे
इतिहास की दहलीज़ पर रखकर लौट आता हूँ—
हर दिन के अंत में मुफ़्त बिक जाता हूँ मैं

अपनी क़ीमत, मेरी महबूब
अपनी छाया से पूछ
कितनी किरनें तुमसे मात खाकर
राख हो चुकी हैं
मैंने भी अपना रक्त गिराने के लिए
कैसा कुरुक्षेत्र पसंद किया है
मेरी आँख के हर कदम में
मेरे स्त्रष्टा के अंग बिखरे पड़े हैं
और मेरे भीतर अनगिनत रावणों, दुर्योधनों की
लाश जी उठी है—
तेरा मोल, तेरी कद्र
इतिहास के कदमों को माप ले या न माप ले
लेकिन मैं लक्ष्मण-रेखा उलाँघकर
शून्य में लटक जाऊँगा
मेरे अभिमान का विमान
अगली ऋतु में मेरा गवाह होगा
और तभी मेरी अनमोल
हिम्मतों की कीमत आँकी जाएगी
मुझे तुम्हारी शोख़ी की हदें लाँघने का
तो कोई गम नहीं
मैं तो इस यौवन से उमगती घाटी में
तेरी हदें खींचने से कतरा रहा हूँ
मेरी महबूब
इस सूरज को मुट्ठी में पकड़ने की लालसा न कर
मुझे इसमें जल जाने के लिए
लाखों जन्म लेने हैं।

बेकद्र जगह

मेरा अपमान कर दें
मैं कहाँ मान करता हूँ
कि मैंने अंत तक सफ़र किया है
वरन् मैं तो उन पैरों का मुजरिम हूँ
कि जिनका 'विश्वास' मैंने किसी बेक़द्र जगह खो दिया
उपलब्धियों का मौसम
आने से पहले ही
मेरे रंग को बदरंग कर दें।

संस्कृति की खोज

(मरियम किसलर, पी-एच.डी., के नाम)

गोरी नसल की गोरी छोरी
तुम हमारी संस्कृति की खोज का स्वाँग छोड़ दो
आधी दिल्ली वैसे भी हिप्पियों के लिए स्वीकृत है
तुम्हारी धरती के साए तो
ज़बरदस्ती के प्रोफेसर, ग्राम-सेवक भी बन सकते हैं

तुम अपने डालर खोटे मत होने देना
जो करना है, निश्चिंत किए जाओ
कल्चर की बात
अब तो जिनों, परियों की कथाओं की बात है

तीस में से पच्चीस रात चाँद नहीं उगता
जब उगता है
दागों से भरा हुआ

अब तो बादल धुएँ के हैं
अब तो उतने बरसते नहीं हैं
अब तो न हमारी गली में
घुटने-घुटने बाढ़ आती है
अब तो मोचियाना पोखर
कभी भी वीराने तक नहीं आता
न ही कभी वेईं [1] पोखर से मिली है

अब तो गुरुवार के दिन भी
कानी गीदड़ी के ब्याह से ज़्यादा कुछ नहीं होता
अब तो सरसों के खेतों में उतने फूल नहीं खिलते
अब तो गाँव के दर्जी के पास वासंती रंग भी खतम हो गया है
अब तो गन्ने भी फीके होते जाते हैं
अब तो मेरा भारत मिट्टी की चिड़िया है
अब तो हमारे पुरखों के कंठे से लेकर
गुरुओं-पीरों के शस्त्र तक
लंदन के अजायबघर की शोभा हैं

हर मंदिर में सोमनाथ बेपर्द खड़ा है
अब तो यहाँ तिड़का हुआ ताजमहल है
पीतल का दरबार साहिब है
और खंडहर हुई अजंता है

इंडिया गेट की ईंटों पर
गिनती काम करने आए लोगों की है बढ़ती जाती
कुतुब मीनार की भी छः मंजिलें बाकी हैं
(चाहे आत्महत्या के लिए काफ़ी हैं)

मैं भूखे मरते लोगों का
भूखा मरता कलाकार हूँ

तुम मेरी जीवन संगिनी बनकर क्या करोगी?
मैं माँ-बाप की क़सम खाकर कहता हूँ
तुम्हारी कौम की किस्त चुकाने के लिए
घर में कुछ नहीं बचा।

[1. नदी का नाम।]

वक़्त आ गया है

अब वक़्त आ गया है
कि आपसी रिश्ते का इक़बाल करें
और विचारों की लड़ाई
मच्छरदानी से बाहर निकलकर लड़ें
और प्रत्येक गिले की शर्म
सामने होकर झेलें

वक़्त आ गया है
कि अब उस लड़की को
जो प्रेमिका बनने से पहले ही
पत्नी बन गई, बहन कह दें
लहू के रिश्ते का व्याकरण बदलें
और मित्रों की नई पहचान करें
अपनी-अपनी रक्त की नदी को तैरकर पार करें
सूर्य को बदनामी से बचाने के लिए
हो सके तो रात-भर
ख़ुद जलें।

रक्तक्रिया

अब चाँदनी नहीं
चाँदनी की मिट्टी बोलती है

सिर्फ़ फ़र्ज चले जाते हैं
हक़ीकतों की ठंड में ठिठुरते हुए...

मैंने अपने नाखूनों से
दीवारों की जीभ काट डाली है
अब उनके पास सिर्फ़ कान हैं
पोस्त के फूल आज भी हँसते हैं
और मैं उन्हें रक्तिम रंग के
महत्त्व पर भाषण देता हूँ...

ज़ाहिर है कि गुरु ने बेदावा फाड़ डाला था
लेकिन शब्दों के सफ़र को
कोई क्या कर सकता है?
वे बेदावे के इतिहास को नहीं फाड़ सके थे

वृक्ष शांत हैं, हवा पहाड़ों में अटक गई है
कायर का शब्द
सिर्फ़ साइकिल का पटाका बोलने जैसा है
और, अभी और सड़क हुंकारा माँगती है
क़दमों से चाहे चलो या मापो
सफ़र का नाम काम जैसा है
जिसमें से फटे हुए दूध की तरह
पुण्य और पाप अलग हो सकते हैं

कोर्स में कीट्स के प्रेम-पत्रों की परीक्षा है

लेकिन रोज़गार दफ़्तर में
वे सिर्फ़ ज़फ़रनामे की डिवीज़न पूछते हैं

चाँद काले महर की तरह सोया है
मैं बढ़ता हूँ कदमों की आहट से सावधान
रात शायद मुहम्मद गौरी की कब्र है
जिस पर शेरे-पंजाब का घोड़ा हिनहिनाता है

बढ़नेवाले बहुत आगे चले जाते हैं
वे वक़्त को नहीं पूछते
वक़्त उन्हें पूछकर गुज़रता है

सिर्फ़ विविध भारती सुनने के लिए
पिस्तौल की कीमत गँवाई नहीं जा सकती
पान खाना ज़रूरी नहीं
सिर्फ़ सिगरेट से भी काम चल सकता है

मैं जहाँ पैदा हुआ हूँ
वहाँ सिर्फ़ चाकू उगते हैं या लिंग अंग

आग से घर जलाकर रोशनी का काम लिया जाता है
या महात्मा लोगों के वचन सिसकते हैं...

लेकिन अपीलें मेरे लिए प्रभावी नहीं होतीं
क्योंकि मैं जानता हूँ
क्लासें सिर्फ़ डेस्कों पर ही नहीं
बाहर बाज़ारों में भी होती हैं
रात को किरनों से नहीं
सिर्फ़ सूर्य से धोया जा सकता है

इसलिए अब चाँदनी नहीं
चाँदनी की मिट्टी बोलती है
और फ़र्ज़ चले जाते हैं
चले जाते हैं...

श्रद्धांजलि

इस बार पाप की बारात बहुत दूर से आई है
लेकिन हम बैरंग लौटा देंगे
मास्को या वाशिंगटन की मोहर भी नहीं देखनी
ज़बरदस्ती का दान क्या
हम फैले हुए तलवों पर भी थूक देंगे
तल्खियों ने हमें बेलिहाज़ बना दिया है
गैरत ने हमें वहशी बना दिया है...
पारंपरिक तलवार को बाबाजी[1]
(भले हमने कौडे राक्षस से छीनी थी)
जब से तुम्हारा स्पर्श मिला है
शहर शहर में सच्चा सौदा करती है
जेल जेल में चक्की इससे डरकर ख़ुद चलती है
और हमने समय के पत्थर पर
इस तलवार से इंसाफ़ का पंजा साफ़ कर दिया है
बाबा तुम तो सर्वज्ञानी हो
हम तुमसे कभी इनकारी नहीं
हमने भागो[2] के भोज को ठुकरा दिया है
हम तलवंडी की ममता छोड़
झुग्गियों, झोंपड़ियों व जंगलों में निकल आए हैं
सिर्फ़ एक अनहोनी करने लगे हैं
यह सज्जनों[3], भूस्वामियों की सेना
हाथों में मशीनगनें लेकर निकल आई हैं
अब भाषण का अमृत कारगर नहीं होगा
और हम तुमसे परे नहीं, तुम सर्वज्ञानी हो...
हम लोहे के जल की वर्षा करने चले हैं
और हम तुमसे इनकारी नहीं, तुम सर्वज्ञानी हो...

[1. गुरुनानक 2. एक अमीर, जिसका भोज गुरुनानक ने ठुकरा दिया था और ग़रीब लालो का भोजन स्वीकार किया था 3. गुरुनानक के समय का एक ठग।]

विस्थापन

जब अफ़ीमची से अफ़ीम छूटती है
तो आधी-आधी रात जा पोखर में घुसता है
कुएँ में उतरकर भी बदन जलता है
पल-पल में दिशा-मैदान जाता है
अपने भीतर मरे हुए शेर की बड़ी दुर्गंध आती है

अफ़ीमची ज़र्दा लगाकर
मुर्दा शेर को दो साँस और दिलाना चाहता है
लेकिन मृत शेर कब दम ले पाता है
अफ़ीमची से जब अफ़ीम छूटती है...

खुला खत

प्रेमिकाओं को पत्र लिखनेवालो !
यदि आपकी कलम की नोंक बाँझ है
तो कागजों का गर्भपात न करो
सितारों की ओर देख क्रांति लाने की
सलाह देनेवालो !
क्रांति जब आएगी
आपको भी तारे दिखा देगी
बंदूकोंवालो !
या तो बंदूकों का मुँह दुश्मन की ओर कर दो

या फिर ख़ुद अपनी ओर
क्रांति कोई दावत नहीं, नुमायश नहीं
मैदान में बहती नदी नहीं
वर्गों की, रुचियों की दरिंदगी भरी भिड़ंत है
मारना है, मरना है
और मौत को ख़त्म करना है

आज वारिस शाह की लाश
कँटीली नागफनी बनकर
समाज के बदन पर उग आई है—
उससे कहो कि
यह युग वारिस का युग नहीं
वियतनाम का युग है
हर क्षेत्र में
हकों के संग्राम का युग है।

कागज़ी शेरों के नाम

आप उत्तर हैं न दक्षिण
तीर न तलवार
और यह जो सीलनवाली कच्ची दीवार है
आप इसके भीतर के दो सूराख हैं
जिनमें से दीवार के पीछे का शैतान
अपना डिफेंस देखता है...
आप गेहूँ की कटाई में
गिरे हुए चने हैं
और मिट्टी ने आपका भी हिसाब करना है
हमारे लिए तो आप एक ठोकर भी नहीं
शायद
आपको अपने अस्तित्व का कुछ भ्रम है

मैं बताता हूँ कि आप क्या हैं?
आप कीकर के बीज हैं
या टूटी हुई टोकरी
जो कुछ भी उठाने में अक्षम है
आप यह एयरगन
कंधे पर लटकाए फिरते हैं
आप क़त्ल नहीं कर सकते
सिर्फ़ सात-इक्यावन के मुद्दई हो सकते हैं।

संकल्प

चाँदनी मुझसे बहुत परहेज़ करती है
ख़ुद कमाई रात के सामने होने की
जुर्रत मैं नहीं कर सकता
रोज मेरी चादर में
एक सुराख बढ़ जाता है
चाहे किरनों की कचहरी में
अभी मेरी बात तक भी नहीं चली
शाम के और अपने बदन के गम के
जब भी साझे होने की बात सोचता हूँ
खौल जाता हूँ जैसे
मैंने ज़िंदगी का जो भी पल बचाया है
उसके हर हक के लिए बगावत करूँगा
मैं प्रतिदिन मंसूर नहीं बनूँगा
मैं शूली पर नहीं चढ़ूँगा
मैं अपनी शांत सीमा में
हंगामा कर दूँगा
मैं अपनी लीक को
हवाओं में उलझा दूँगा।

परखनली में

दुश्मन तो हर तरह गुमराह करता है
दुश्मन का कब कोई विश्वास करता है
आपने दोस्त बन हमेशा हमें बदनाम किया है
और लानत हमें
जिन्होंने अब तक माफ़ किया है...
कभी रहबर बनकर हमें क़त्लगाह छोड़ आए
कभी झंडे का रंग बताकर
हमारे अल्हड़ गीतों को नापाक किया
और कभी रूबल चबाकर हमसे थूक के रंग गिनवाए
आप छलिया नहीं तो क्या बला हैं?
और इससे पहले कि आप सर से गुज़र जाते
आपको चुटिया से पकड़ लिया है हमने
अब आप एक वर माँगने के लिए कहेंगे
और हम आपकी मौत माँगेंगे...

आप हैरान न हों

आप हैरान होते हैं
और मुझसे मेरी दृढ़ता की वजह पूछते हैं?
मेरा अब कहना नहीं बनता—
भला क्यों कोई मरूस्थलों में जलता है
और किसलिए तेसा पकड़कर
पर्वतों से नहर निकालता है?

आप बेखौफ़ होकर आएँ
और एक बेवफा प्रेमिका की तरह
मुहब्बत का हमें अंजाम दे जाएँ
देखो— आपके 'दिलफरेब' हुस्न को निहारते
मैंने 216 घंटे जागकर बिताए हैं
और बिजली की नंगी तार पर हाथ रखा है
और चाश्नी में लिपटे अंग
चींटियों की बांबी पर फेंक दिए हैं
आप सोचते होंगे
अब मैं गिड़गिड़ाऊँगा
हम भिखारी नहीं
हमें तो ऐसे ही मर जाने का शौक होता है
हम आँखों में आँखें डालकर देखते हैं
हम प्रेमिका के पैर नहीं पकड़ते
आप हैरान न हों
मेरा तो कहना बनता नहीं
कि अब वह ऋतु आनेवाली है
जिसमें सरफ़रोशी के वृक्षों पर फूल उगते हैं
आपकी चर्खड़ी के अर्थ भी धुन दिए जाते हैं।

रात से

उदास बाज़रा, सिर झुकाए खड़ा है
तारे भी बात नहीं करते
रात को क्या हुआ है...
ऐ रात, तू मेरे लिए उदास न हो
तू मेरी देनदार नहीं

रहने दे, इस तरह न सोच
जुगाली करते पशु कितने चुप हैं
और गांव की स्निग्ध फ़िज़ा कितनी शांत है
रहने दे, रात, तू ऐसे न सोच, तू मेरी आँखों में झाँक
ये उस बाँके यार को अब कभी न दिखेंगी
जिसकी आज अखबारों ने बात की है...
रात! तेरा उस दिन का वह रंग कहाँ है?
जब वह पहाड़ी चो के जल की तरह
जल्द-जल्द आया था
चाँदनी की लौ में पहले हम पढ़े
फ़िर चोरों की तरह बहस की
और फिर झगड़ पड़े थे
रात! तू तब तो खुश थी
जब हम लड़ते थे
तू अब क्यों उदास है
जब हम बिछड़ गए हैं
रात, तुझे जानेवाले की क़सम
तेरा यों उदास होना बनता नहीं है
मैं तेरा देनदार हूँ
तू मेरी देनदार नहीं
रात, तू मुझे बधाई दे
मैं इन खेतों को बधाई देता हूँ
खेतों को सब पता है
आदमी का लहू कहाँ गिरता है
और लहू का मोल क्या होता है
यह खेत सब जानते हैं
इसलिए ऐ रात!
तू मेरी आँखों में देख
और मैं भविष्य की आँखों में देखता हूँ।

प्रतिज्ञा

आपको हमेशा पता होता है
आप किस दरवाज़े से धकेलकर आ घुसेंगे
और आओ, आपको वह दरवाज़ा बताएँ
जहाँ आप अफरा-तफरी मचानेवालों को
हम दफा करनेवाले हैं—
आपने जो कथा पत्थर-युग से अपोलो-युग तक
बेरोक कही है— चाहे-अनचाहे
हमने हुंकारा भरा है
और अब हम पत्थर-युग से ही उठकर
अपनी कथा कहने लगे हैं—
'आप' जिसके आदी हो—
यह सपनों से भरी वह रात नहीं
यह रात अँधेरे का क़त्ल करके आई
पूरब की ओर चली जाती एक वहशी लड़की है
और देखो ! हम इस लड़की का
लिंग बदलने लगे हैं
यह यारी वह यारी नहीं
जिसे आप सदियों से निभाते आए हैं
इससे हम
आपके अंतस का दंभ मापेंगे
और जो बुत हम
शहर के चौक में लगाने चले हैं
वह प्रेमसिंह का भाई खेमसिंह नहीं
न यह गंगाराम है, न यमुनादास
यह तो वह बुत है
जिसे अपनी समझ में आप
रोज क़त्ल करते हैं...

अंत में

हमें पैदा नहीं होना था
हमें लड़ना नहीं था
हमें तो हेमकुंट पर बैठकर
भक्ति करनी थी
लेकिन जब सतलुज के पानी से भाप उठी
जब काज़ी नज़रूल इस्लाम की जबान रुकी
जब लड़कों के पास देखा 'जेम्स बांड'
तो मैं कह उठा, चल भाई संत (संधू)[1]
नीचे धरती पर चलें
पापों का बोझ तो बढ़ता जाता है
और अब हम आए हैं
यह लो हमारा ज़फरनामा
हमारे हिस्से की कटार हमें दे दो
हमारा पेट हाजिर है...

[1. पाश के कवि मित्र।]

उड्डदे बाजाँ मगर

(1974)

उड़ते हुए बाजों के पीछे

उड़ गए हैं बाज चोंचों में लेकर
हमारी चैन से एक पल बिता सकने की खाहिश
दोस्तो, अब चला जाए
उड़ते हुए बाजों के पीछे...

यहाँ तो पता नहीं कब आ धमकें
लाल पगड़ियोंवाले आलोचक
और शुरू कर दें
कविता की दाद देनी
इससे पहले
कि फैल जाए थाने की रोज फैलती इमारत
तुम्हारे गाँव, तुम्हारे परिवार तक
और संलग्न हो जाए
आत्मसम्मान का काँपता हुआ पृष्ठ
उस छुरी मुखवाले मुंशी के रोज़नामचे में—
दोस्तो, अब चला जाए
उड़ते हुए बाजों के पीछे...

यह तो सारी उम्र न उतरेगा
बहनों के ब्याहों पर उठाया कर्ज
खेतों में छिड़के खून का
हर कतरा भी इकट्ठा कर
इतना रंग न बनेगा
कि चित्रित कर लेंगे, एक शांत
मुस्कराते हुए इंसान का चेहरा
और फिर
ज़िंदगी की पूरी रातें भी गिनते चलें

सितारों की गिनती न हो पाएगी
क्योंकि हो नहीं सकेगा यह सब
फिर दोस्तो, अब चला जाए
उड़ते हुए बाजों के पीछे...

यदि आपने महसूस की हो
गंड[1] में जम रहे गर्म गुड़ की महक
और देखा हो
जोती हुई गीली ज़मीन का
चाँद की चाँदनी में चमकना
तो आप सब जरूर कुछ इंतजाम करो
लपलपाते उस मतपत्र का
जो लार टपका रहा है
हमारे कुओं की हरियाली पर
जिन्होंने देखे हैं
छतों पर सूखते सुनहरे भुट्टे
और नहीं देखे
मंडियों में सूखते दाम
वे कभी न समझ पाएँगे
कि कैसे दुश्मनी है
दिल्ली की उस हुक्मरान औरत की
नंगे पाँवोंवाली गाँव की उस सुंदर लड़की से
सुरंग-जैसी ज़िंदगी में चलते हुए
जब लौट आती है
अपनी आवाज़ ख़ुद के ही पास
और आँखों में चुभते रहते
बूढ़े बैल के उचड़े कानों-जैसे सपने
जब चिमट जाए गलियों का कीचड़
उम्र के सबसे हसीन सालों से
तो करने को बस यही बचता है
कि चला जाए
उड़ते हुए बाजों के पीछे...

[1. गुड़ जमाने की कड़ाही या चाक।]

मैं पूछता हूँ

मैं पूछता हूँ आसमान में उड़ते हुए सूरज से
क्या वक़्त इसी का नाम है
कि घटनाएँ कुचलती चली जाएँ
मस्त हाथी की तरह
एक समूचे मनुष्य की चेतना को?
कि हर सवाल
केवल परिश्रम करती देह की गलती ही हो?

क्यों सुना दिया जाता है हर बार
पुराना लतीफ़ा
क्यों कहा जाता है हम जीते हैं
ज़रा सोचें—
कि हममें से कितनों का नाता है
ज़िंदगी जैसी किसी चीज़ के साथ!

रब्ब की वह कैसी रहमत है
जो गेहूँ गोडते फटे हाथों पर
और मंडी के बीच के तख़्तपोश पर फैले मांस के
उस पिलपिले ढेर पर
एक ही समय होती है?

आख़िर क्यों
बैलों की घंटियों
और पानी निकालते इंजनों के शोर में
घिरे हुए चेहरों पर जम गई है
एक चीख़ती खामोशी?
कौन खा जाता है तलकर

टोके पर चारा लगा रहे
कुतरे हुए अरमानों वाले पट्ठों की मछलियाँ?

क्यों गिड़गिड़ाता है
मेरे गाँव का किसान
एक मामूली पुलिसवाले के सामने?

क्यों किसी कुचले जा रहे आदमी के चीख़ने को
हर बार
कविता कह दिया जाता है?
मैं पूछता हूँ आसमान में उड़ते सूरज से

बाडर (बार्डर)

(मोगा गोलीकांड[1] को समर्पित)

भर जाएँगे अब धूल से कस्बों के सिर
घूमेंगे ट्रक बी.एस.एफ. के
पली हुई जुँओं की तरह....
इस बार नहीं आएगी सतवर्ग के फूलों पर खिलने की रुत

कुचला गया घास तड़पेगा
कालेजों के आँगनों में
रात-दिन पवन को भ्रष्ट करेगी
थाने में लगी वायरलेस...

दरअसल
यहाँ हर जगह पर एक बाडर है
जहाँ हमारे हक़ ख़त्म होते हैं
और प्रतिष्ठित लोगों के शुरू होते हैं

और हम हर तरह आज़ाद हैं इस पार—
गालियाँ निकालने के लिए
मुक्के लहराने के लिए
चुनाव लड़ने के लिए
सतवर्गों की मुस्कान चूमने के लिए
कोई बंदिश नहीं इस पार
और इससे आगे है—
कस्बों में उड़ती हुई धूल
पली हुई जुँओं की तरह
रेंगते ट्रक बी.एस.एफ. के।

[1. 5 अक्तूबर, 1972 को मोगा में छात्र-प्रदर्शन पर पुलिस की गोलाबारी से कुछ विद्यार्थी शहीद हुए थे।]

ऐसे ही सही

हम बकरे बुलाते उन्हें अच्छे नहीं लगते
चलो ऐसे ही सही
वे तो बस शग़ल फ़रमाते रहे
मरसिए सुनते आए
दाद देते रहे...

ज़िंदगी 'गर कविता-सी होती
हम खामोश ही रहते
सपने 'गर पत्थर के होते
गीटों संग ही बदल जाते

पानी से 'गर पेट भर सकता
तो पीकर सो रहते
चाँदनी 'गर ओढ़ाई जा सकती

सिलकर पहन लेते...

यहाँ लेकिन कुछ दिखाई नहीं देता
शांति-कपोतों जैसा
गीतों के दरख़्त नहीं मिलते
जिन पर झूले डाल लें...

हमें तो छीननी है
अपनी चुराई हुई रातों की नींद
हमें देखना है ज़ोर
खून-सने हाथों का
उन्हें भला लगने के लिए
हम अब मरसिए नहीं गाएँगे...

जेल

उन्हें रहा एक भ्रम
कि ताले बंद कर देंगे
गुस्ताख पलों का अशरीरी अस्तित्व
दीवारें खड़ी कर देंगे सड़कों के सीने पर

रोशनी के कई साल बादलों के संग-संग चले
ऋतु के बाद ऋतु को कोई रोक न पाया
सिर्फ़ छतों पर झूलता रहा
दुःख उन पलों का
'जिन्हें तीरों की नोक पर पलना था।'

आसमान का टुकड़ा

मेरी तो जान है आसमान का वह टुकड़ा
जो रोशनदान में से झाँक पड़ता है
सख़्त दीवारों और सींखचों का भी लिहाज़ नहीं रखता

वे तो चाहते हैं
कि मैं इस टुकड़े के सहारे ही जिऊँ
और फिर कहते क्यों नहीं इससे
कि वहीं जम जाए, नए-नए रंग न बदले—
देखो यह टुकड़ा हर पल रंगत बदलता है
इसके हर रंग के साथ लगा है ऋतुओं का सौंदर्य
ज़रा पूछ देखो इस टुकड़े से, मौसम से न बँधे
फेंक दे यह अपनी देह से
ऋतुओं की परछाइयाँ
यह टुकड़ा तो अपने कंधों पर
पूरा आसमान ही उठाए फिरता है...

[जेल से।]

जन्मदिन

वर्षों के कंधों पर हाथ रखकर
चलती रही जन्म लेने की लालसा
उन्नीस कदम चलकर भी मुझे
जन्म लेने का सामान न मिला
सिर्फ़ अक्षरों के बोझ
नामों का सफ़र किया—

एक नाम था मेरी माँ का एक पिता का
कुछ नाम दोस्तों के थे
कुछ शहरों के और कुछ सड़कों के
यह सभी नाम 'र' से शुरू होते हैं
जिनसे एक शब्द 'रवायत' बनता था
पर कोई भी नाम ज़िंदगी नहीं था
जो 'ज' से शुरू होना था
लेकिन जब न जन्मने का एहसास
दर्द बन गया
तो बीसवाँ कदम सामने था
और मुझे 'ज' के बिखरे शब्द-अंगों में संगीत भरना था—
हवा में एटमी धूल थी
और आकाश में आँखें उग आई थीं
शब्दों के 'पुण्य' और 'पाप' का
मेरी कौम कर रही थी सफ़र
मैंने बाँध लिए सभी नाम
अपनी पीठ पर
और तैरा मशक की तरह
अपने रक्त के सागर में...

जहाँ मेरा बीसवाँ कदम ख़त्म होता था
वहाँ 'जेल' थी—
और इस तरह 'इक्कीसवें' वर्ष की दहलीज़
मैंने 'ज' के वजन से पार की है
जिससे एक शब्द 'जन्म' बनता है
और एक 'जीवन'
और बीस के बीस वर्ष
इस नवजात मनुष्य को
गोदी में ले लोरी गाते हैं
और साथ ही घुल जाता है
कैदी साथियों का बेड़ियाँ खनकाकर गाया
'जन्मदिन मुबारक' का गीत...

[जेल से।]

दान

आपने मुझे दिया है सिर्फ़ एक कमरा
स्थिर और बंद
मापना तो मुझे है
कि इसमें कितने कदमों से
मील बनता है
कितने मील चलकर दीवार दीवार नहीं रहती
और सफ़र के अर्थ शुरू होते हैं...

आपने मुझे कुछ हक दिए हैं—
घर से जलावतनी का
रोटी के लिए मिट्टी होने का
महबूब के गम में आँखें खोने का
और मौत के भयानक कोहरे में गुम हो जाने का
लेकिन एक हक और होता है
जो दिया नहीं, सिर्फ़ छीना जाता है...

आपके पास वायदों का समुद्र
मेरे डूबने के लिए
जिसमें तैरती हैं
सुनहरी सपनों की मछलियां
लेकिन उपलब्धि का किनारा ओझल होने से पहले
मैंने पकड़ लिया है बेवफाई का चप्पू
और अब आपके पास बचा है
मुझे देने के लिए सिर्फ़ एक पुरस्कार—
मौत
और वह भी बड़े दानवीरो!
आपका स्वयं रखने को जी चाहता है!

[जेल से।]

मेरे पास

मेरे पास बहुत कुछ है
शाम है— बौछारों से भीगी हुई
ज़िंदगी है— नूर में दहकती हुई
और मैं हूँ— 'हम' के झुरमुट में घिरा हुआ
मुझसे और क्या छीनेंगे
शाम को किसी दूरदराज़ की कोठरी में बंद करेंगे?
ज़िंदगी से ज़िंदगी को कुचल देंगे?
'हम' में से 'मैं' को निथार लेंगे?
जिसे आप मेरा 'कुछ नहीं' कहते हैं
उसमें आपकी मौत का सामान है
मेरे पास बहुत कुछ है
मेरे उस 'कुछ नहीं' में बहुत कुछ है।

अस्वीकार

इन चार दीवारों का घेरा मेरा घर नहीं
जिसमें गुज़ारे पलों को
मैं उम्र कह दूँ
यहाँ सिर्फ़ कमरे की दीवारों पर
लिखा जा रहा है संवत् का विवरण...
जब मैं इस कमरे में बंद किया गया
ज़िंदगी को साथ नहीं लाया था

उसे बाहर सफ़र को पकड़ा आया था।

पवन को पहरेदारी पर बिठा आया था ....
बेड़ी पर लगी जंग की तरह
मेरे जिस्म को भी आप दे सकते हैं
लेकिन क्या करेंगे सफ़र का
जो एक अमानत सँभाले हुए हैं
पवन का क्या करेंगे
जिसे कहीं हिसाब देना है
और उस कमरे के मलबे पर बनना है।

[जेल से।]

सफ़र

पुराने कैलेंडर में फेंक दिया है
मैंने चाहत की सधी हुई उँगलियों का जाल
अतीत के सागर से निकाल लाऊँगा
कोई ठहरा हुआ समय
और उसे अपने आज के हुजूर में पेश कर
दुत्कार दूँगा

जिन पलों में महबूब का हुस्न
मैंने खेतों में बिखरा दिया था
उन्हीं के मान से
अब खेतों से निष्ठा का वर माँगूँगा
और शहादत की सदासुहागिन सड़क को
अपने कुँवारे कदमों की ताल दूँगा

मेरी आहों में है सीलन भरी हवाओं की गंध

मेरे माथे पर है पतझड़ का उदास रंग
और मेरी बाँहों में है समय का सच
मैं अपने दिल में भरना चाहता हूँ
बहारों के उमड़ते अनगिनत गीत...

मुझे पता है
पराक्रम नहीं होते यह पैतृक कर्तव्य
यह कोई एहसान नहीं किसी पर
कि मैं किस मौसम में ग़ालिब के शेर
फर्श पर मसल आया हूँ

मेरा भी दिल है
रूठों को मनाने का
मित्तर-प्यारे को दिल की बात सुनाने का
मोचियाने पोखर पर बैठ बाँसुरी बजाने का
और मासूम गीतों को वक़्त-बेवक़्त सलाम कहने का

मैं अपने दिल को
खारे कुएँ के पीपल पर टाँग आया हूँ
और मेरे भीतर की जेब में चुभती है
वसंत की सौगंध

यह सफ़र कहाँ शुरू होता है
या सफ़र-धूल के कितने रंग होते हैं
या कोई और प्रश्न
आप किसी अफलातून से पूछ आएँ
मैं एक अ-सभ्य मुसाफिर
केवल यही कह सकता हूँ
कि विदाई का कोई शब्द नहीं होता
जो सफ़र होता है वह दर्द नहीं होता
मौत कोई मुकाम नहीं होता
और मंज़िल का कोई अर्थ नहीं होता।

[जेल से।]

हाथ

मैं अपने जिस्म को
हाथों में सँभाल सकता हूँ
मेरे हाथ जब महबूब का हाथ माँगते हैं
पकड़ने को तो मैं चाँद भी हाथों में पकड़ना चाहता हूँ

मेरे हाथों को लेकिन
सींखचों का स्पर्श बिना शिकवा मुबारक है
साथ ही कोठरी के इस अँधेरे में
मेरे हाथ, हाथ नहीं होते
सिर्फ़ थप्पड़ होते हैं...

हाथ मिलाने पर पाबंदी सिसकती रह जाती है
जब अचानक कोई साथी सामने आता है
हाथ ख़ुद-ब-ख़ुद
मुक्का बनकर लहराने लगते हैं...

दिन हाथ खींचता है
तो रात हाथ बढ़ाती है
कोई हाथ छीन नहीं सकता इन हाथों का सिलसिला
या कभी दरवाज़ों की पाँचों की पाँच सलाखें
बन जाते हैं कोई बड़े प्यारे हाथ—

एक हाथ मेरे गाँव के बुजुर्ग तुलसी का
जिसकी उँगलियाँ
वर्षों को गूँथ-गूँथकर थीं इतनी थकी
कि मुझे पढ़ाते हुए
उर्दू के पहले सबक

बन जाता था उससे अलिफ का 'त'...

एक हाथ जगीरी दर्जी का
जो जब भी मुझे जाँघिया सिलकर देता
तो लेता था पारिश्रमिक
मेरे कान मरोड़ने में
और यह जानते हुए भी कि मैं उलट करने से
बाज नहीं आऊँगा
नसीहत देता था—
पशुओं के साथ पोखर में न घुसा कर
बचकाने खेल खेलने से बाज आएगा या नहीं?

एक हाथ प्यारे नाई का
जो काटते हुए मेरे केश
डरता रहता था मेरे सिख घरवालों से...

एक हाथ मरो दाई का
जिसके हाथ में था कोई रिकार्ड
जो सदा राग गाता था—
'जीते-जागते रहो बेटे!'

और एक हाथ दरसू दिहाड़िए का
जिसने पी ली आधी सदी
रखकर हुक्के की चिलम में...

मुझसे कोई छीन नहीं सकता
इन हाथों का सिलसिला
हाथ जेबों में हों या बाहर
हथकड़ी में हों या बंदूक के कुंदे पर
हाथ, हाथ होते हैं
और हाथों का एक धर्म होता है

हाथ यदि हों तो
जोड़ने के लिए ही नहीं होते

न दुश्मन के सामने खड़े करने के लिए ही होते हैं
यह गर्दनें मरोड़ने के लिए भी होते हैं
हाथ यदि हों तो
हीर [1] के हाथ से चूरी पकड़ने के लिए ही नहीं होते
सैदे [2] की बारात रोकने के लिए भी होते हैं
कैदो [3] की कमर तोड़ने के लिए भी होते हैं
हाथ श्रम करने के लिए ही नहीं होते
शोषक हाथों को तोड़ने के लिए भी होते हैं...

जो हाथों का धर्म भंग करते हैं
जो हाथों के सौंदर्य का अपमान करते हैं
वे पंगु होते हैं
हाथ तो होते हैं सहारा देने के लिए
हाथ तो होते हैं हुंकारा भरने के लिए।

[1. प्रसिद्ध लोकनायिका 2. हीर का अनचाहा पति 3. हीर के प्यार का दुश्मन चाचा।]

[जेल से।]

रिहाई : एक प्रभाव

आप जब बाहर आते हैं
तब पुनः घुटनों चलना तो सीखना नहीं पड़ता
जबान तोतली नहीं होती
न माँ के दूध की ही तलब होती है

आप आसमान पर लिखे नामों में
अपना नाम ढूँढ़ते हैं
हवा तसदीक करती है
और पौधे जश्न मनाते हैं—
ऐसे शुरू होता है, ज़िंदगी का अमल फिर से...

फिर वही संघर्ष की कथा, आत्मा को बहलाने के लिए
फिर वही जनता का जंगल, खो जाने के लिए
फिर वही जीत की उम्मीद...
ऐसे शुरू होता है
ज़िंदगी का अमल फिर से।

[जेल से]

हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए
हम लड़ेंगे साथी, गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी, ज़िंदगी के टुकड़े

हथौड़ा अब भी चलता है, उदास निहाई पर
हल की लीकें अब भी बनती हैं, चीखती धरती पर
यह काम हमारा नहीं बनता, सवाल नाचता है
सवाल के कंधों पर चढ़कर
हम लड़ेंगे साथी

क़त्ल हुए जज्बात की क़सम खाकर
बुझी हुई नज़रों की क़सम खाकर
हाथों पर पड़ी गाँठों की क़सम खाकर
हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे तब तक
कि बीरू बकरिहा जब तक
बकरियों का पेशाब पीता है
खिले हुए सरसों के फूलों को
बीजने वाले जब तक ख़ुद नहीं सूँघते

कि सूजी आँखोंवाली
गाँव की अध्यापिका का पति जब तक
जंग से लौट नहीं आता
जब तक पुलिस के सिपाही
अपने ही भाइयों का गला दबाने के लिए विवश हैं
कि बाबू दफ्तरों के
जब तक रक्त से अक्षर लिखते हैं...
हम लड़ेंगे जब तक
दुनिया में लड़ने की ज़रूरत बाकी है...

जब बंदूक न हुई, तब तलवार होगी
जब तलवार न हुई, लड़ने की लगन होगी
लड़ने का ढंग न हुआ, लड़ने की ज़रूरत होगी
और हम लड़ेंगे साथी...

हम लड़ेंगे
कि लड़ने के बगैर कुछ भी नहीं मिलता
हम लड़ेंगे
कि अभी तक लड़े क्यों नहीं
हम लड़ेंगे
अपनी सजा कबूलने के लिए
लड़ते हुए मर जानेवालों
की याद ज़िंदा रखने के लिए
हम लड़ेंगे साथी...

द्रोणाचार्य के नाम

मेरे गुरुदेव! उसी वक़्त यदि आप एक भील बच्चा समझ
मेरा अगूँठा काट देते
तो कहानी दूसरी थी...

लेकिन एन.सी.सी. में
बंदूक उठाने का नुक्ता तो आपने ख़ुद बताया था
कि अपने देश पर
जब कोई मुसीबत आन पड़े
दुश्मन को बनाकर
टार्गट कैसे
घोड़ा दबा देना है—

अब जब देश पर मुसीबत आ पड़ी है
मेरे गुरुदेव!
ख़ुद ही आप दुर्योधनों के संग जा मिले हो
लेकिन अब आपका चक्रव्यूह
कहीं भी कारगर न होगा
और पहले वार में ही
हर घनचक्कर का
चौरासी का चक्कर कट जाएगा
हाँ, यदि छोटी उम्र में ही आप एक भील बच्चा समझ
मेरा अँगूठा काट देते...
तो कहानी दूसरी थी...

मुझे चाहिएँ कुछ बोल

मुझे चाहिएँ कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके...

छीन लो मुझसे यह भीड़ की टें-टें
जला दो मुझे मेरी कविताओं की धूनी पर
मेरी खोपड़ी पर बेशक खनकाएँ शासन का काला डंडा
लेकिन मुझे दे दें कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके...

मुझे नहीं चाहिएँ अमीन सायानी के डायलॉग
सम्हालें आनंद बख्शी, आप जानें लक्ष्मीकांत
मुझे क्या करना है इंदिरा का भाषण
मुझे तो चाहिएँ कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके...

मेरे मुँह में ठूँस दें यमले जट्ट की तूंबी
मेरे माथे पर घसीट दें टैगोर का नेशनल एंथम
मेरे सीने पर चिपका दें गुलशन नंदा के नावेल

मुझे क्यों पढ़ना है ज़फरनामा
'गर मुझे मिल जाएँ कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके....

मेरी पीठ पर लाद दें वाजपेयी का बोझिल बदन
मेरी गर्दन में डाल दें हेमंत बसु की लाश
मेरी...में दे दें लाला जगतनारायण का सिर
चलो, मैं माओ का नाम भी नहीं लेता
लेकिन मुझे दें तो सही कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके...

मुझे पेन में स्याही न भरने दें
मैं अपनी 'लौहकथा'[1] भी जला देता हूँ
मैं 'चंदन'[2] से भी कट्टी कर लेता हूँ
'गर मुझे दे दें कुछ बोल
जिनका एक गीत बन सके...

यह गीत मुझे उन गूँगों को देना है
जिन्हें गीतों की कद्र है
लेकिन जिनका आपके हिसाब से गाना नहीं बनता
'गर आपके पास नहीं है कोई बोल, कोई गीत
मुझे बकने दें मैं जो बकता हूँ।

[1. कवि का प्रथम कविता संग्रह 2. प्रसिद्ध पंजाबी कवि अमरजीत चंदन।]

संविधान

यह पुस्तक मर चुकी है
इसे न पढ़ें
इसके शब्दों में मौत की ठंडक है
और एक-एक पृष्ठ
ज़िंदगी के आखिरी पल जैसा भयानक
यह पुस्तक जब बनी थी
तो मैं एक पशु था
सोया हुआ पशु...
और जब मैं जगा
तो मेरे इंसान बनने तक
यह पुस्तक मर चुकी थी
अब यदि इस पुस्तक को पढ़ोगे
तो पशु बन जाओगे
सोए हुए पशु।

शब्द, कला और कविता

आपको शायद ख़बर न थी
उन बेवा पलों का दर्द महसूस करने वाले की
जो पिरामिडों की पकड़ में नहीं आया
आप शिलालेखों की शाही मोहरों को ही
कविता की कला कहते रहे हैं...

शब्द जो राजाओं की घाटी में नाचते हैं
जो प्रेमिका की नाभि का क्षेत्रफल मापते हैं
जो मेज़ों पर टेनिस-गेंदों की तरह फिसलते हैं
जो मंचों की बंजर ज़मीन पर उगते हैं
कविता नहीं होते

आप समझे थे
शब्द हवा में उड़ते पत्ते हैं
कि दिल्ली के निकासी पंखे
अपनी बेहया बदबूदार हवा के साथ
लिख देंगे समय का काव्य

लेकिन शब्द न तो डरते हैं, न मरते हैं
उन्होंने रक्त-सनी मिट्टी में
कभी ख़मीर नहीं आने दिया
जो दिन के 'अँधेरे' में वर्जित होता है
उसे रात की रोशनी में कर दिखाते हैं

टैगोर या ग़ालिब की दाढ़ी में
शब्द कविता नहीं होते
तिनका होते हैं

'गर बहुत मान है आपको
अपनी कला, अपनी फ़िलासफ़ी पर
तो खोलें अपनी सुनहरी जिल्दों वाले ग्रंथ
आपके शेक्सपियर ने
ज़िंदगी की हँसी में मौत के लतीफ़े का
क्या स्थान बताया है?
आपके बीथोवन ने
माँ-बहिन की गालियों का क्या रिदम बताया है?
महबूब की छाती के गीत वालों का
माँ के दूध
और दूध की लाज का क्या गीत लिखा है?

सुनो

हमारे चूल्हे का संगीत सुनो
हम दर्दमंदों की पीड़ा-लिपटी चीख़ सुनो
मेरी बीवी की फ़रमाइश सुनो

मेरी बच्ची की हर माँग सुनो
मेरी बीड़ी के भीतर का ज़हर गिनो
मेरे खाँसने का मृदंग सुनो
मेरी पैबंदों-भरी पतलून की ठंडी आह सुनो
मेरे पाँव में पहनी जूती से
मेरे फटे दिल का दर्द सुनो
मेरी निःशब्द आवाज़ सुनो
मेरे बोलने का अंदाज़ सुनो
मेरे ग़ज़ब का ज़रा अंदाज़ करो
मेरे रोष का-ज़रा हिसाब सुनो
मेरे शिष्टाचार की लाश लो
मेरी वहशत का अब राग सुनो
आओ आज अनपढ़ जंगलियों से
पढ़ा-लिखा इक गीत सुनो
आप गलत सुनो या ठीक सुनो
हमसे हमारी नीति सुनो।

हाँ, तब

युगों से एक बेलन चलता है
जो पीसता जा रहा ऋतुओं की महक

आपका सौंदर्यशास्त्र कौन पढ़े
क्रंदनों चीख़ों की इस दलदल में
वे किस हद तक ढूँढ़ेंगे
सलोने ताल शब्दों में से
अपने में ही निचुड़ता हो रक्त
जिनके अस्तित्व का पल्लू...

यह अमल क़त्लों का
ख़त्म करने के लिए
जिन्होंने दी है बाँह
वक़्त के बेलन में
वे आपकी कला-रुचियों को ही
बहलाने नहीं आए
न ही उनके रक्त की सड़ाँध से
आपको कोई सौंदर्य मिलेगा...

आप चाहते हैं
हम महकती हुई शैली में लिखें
फूलों के गीत
सूखे घास पत्तों में ढूँढ़ते हैं—
बहार की रूह
कितनी गलत जगह आ गए हैं आप!
यह सूखे पत्ते तो आज या कल जल जाएँगे
साथ ही भस्म हो जाएगी
वीराने की मारक दहशत
और धरती की बाँझ परत

फिर यहाँ भाग्य की तरह उगेंगे खुशबुओं के बाग़
हाँ, उनसे माँग लेना
रूप की मिठास
आप उस मौसम से माँग लेना कोई भी सवाल
'गर तब तक आपकी जीभ पथरा न गई हो...

लंका के क्रांतिकारियों से[1]

लंका के हमराही मेरे, जुझारू वीर संग्रामी
मैं अदना भारतीय तेरी कचहरी में हाज़िर हूँ
तुम्हारा रोष भी सच्चा है और मेरी अर्ज़ भी सच्ची है
न तुम बेगाने हो, न मैं ही तुमसे इंकारी हूँ

तुम्हारे परखचे उड़ाने को, तुम्हारे सपने बिखेरने को
मेरे देश से 'गर तुम्हारे लिए सौग़ात आई है
यह बात कोई अजूबा नहीं है तेरे लिए न मेरे लिए
पुरानी बात है यार, चोर ने चोर से यारी निभाई है

तुम्हारे भी दिल में शोले भड़के, मेरा भी ख़ून खौला है
'गर हथियार उठाये तुमने, मैंने कब सब्र किया है
मेरे लंका के वीर, हम एक ही दर्द जी रहे हैं
मेरा रक्त राम ने पिया, तुम्हारा रावण ने पिया है

रक्त पिलानेवाले जब कभी चौकस होते हैं
इन्हें रक्त पिलाने का नशा नहीं रहता
इस वानर क़ौम को जब सच की पहचान होती है
तब फिर राम और रावण में कोई फ़र्क नहीं रहता

यह इंदिरा जिसने तुम्हें मौत का पैग़ाम भेजा है
स्विट्जरलैंड में जन्मी, लंदन की बेटी है
इसकी साड़ी में डालर है, इसकी आँगया में रूबल है
इसे मेरे देश की कहना, मेरे देश की हेठी है

तुम सच मानना, हर लड़की मेरे देश की इंदिरा नहीं
मेरी धरती में उगती है, अजिता बहिन[1] की हिम्मत
तुम आज भी देख सकते हो, जुल्म की मार के थप्पड़
'गर लंका के बहादुर देखो तुम केवल कौर[2] का चेहरा

मैं ख़ुद बंद हूँ सींखचों में, तुम्हारे लिए कुछ भेज सकता नहीं
तुम भर देना आज़ादी— हीर की माँग में ख़ुद सिंदूर
जब यह लोहे के हरकारे, तुम पर बम फेंकेंगे
तुम जूझोगे, मेरे साथी भी बदला लेंगे पूरा

आ लंका के वीर, एक इकरार हम कर लें
धर्मयुद्ध में जूझने का, दशहरा रोज़ मनाने का
हक़ों की सीता पर जुल्म किसी का होने न देंगे
कि दस हों या सौ, उतारें शीश रावण का

[1. 1971 में लंका में उठे विद्रोह पर जालंधर जेल में लिखी कविता 2. केरल और पंजाब की क्रांतिकारी औरतें।]

अहमद सलीम के नाम[1]

(युद्धबंदियों को समर्पित)

ओ कलम के मज़दूर, ओ मेरे अहमद सलीम
चूमकर सींखचे, मेरे ताजे बने रिश्ते के वीर
मैं भी हूँ जेलों का शायर, मेरा भी इश्क हैं लोग
तुम्हें सताते हैं पिंडीवाले और मुझे दिल्ली के तीर

तभी तो पकड़े जाने पर तुम्हारे, चिल्ला नहीं उठा था मैं
मै तो खुश हुआ था कि हो गई तुम्हारी कविता जवान
साथ ही मेरे घर में भी थे, जल रहे ढाके अनेक
यहाँ भी चिंघाड़ रहा था, भेस बदले यहिया ख़ान

मैं बड़ा हैरान था, क्रंदन मचाते दंभियों को देखकर
जो तुम्हारे सींखचों के पीछे होने पर थे रोते चीख़ते
जलते घर की ओर पीठ कर, रेत फेंकते पड़ोस में
मैं दुखी था, थूक रहे हैं मुँह पर मेरे यार के

मैं नहीं कहता, क़ातिल कहीं भी हों मुआफ़
मैं नहीं कहता कहीं भी, शोषण है जायज़
मैं तो कहता हूँ शोषक बदलना मुक्ति नहीं
भारत-पाक बनियों की, एक-सी है बही

मैं तो कहता हूँ, आज़ादी दानों की मुट्ठी नहीं
दान जो हो सके, पैसे से जो खरीदी जा सके
यह तो वह फ़सल, जिसे रक्त से सींचते हैं लोग
यह नहीं कोई प्रेम-पत्र, कबूतर जिसे ला सके

बेटे खानेवाली डायन, घर में कोई छोड़ा नहीं
नरम सीने खाने का, जिसे पड़ा हो स्वाद
ज़िंदगी की कलम वह औरों के घर लगा सकती नहीं
वह खिला सकती नहीं, हमसायों के आँगन में बाग

आ दिखाऊँ तुम्हें मैं बंगाल के रिसते हुए ज़ख़्म
आ तुम्हें दिखा दूँ मैं आंध्र के दिल में सुराख
यदि तुम्हें चाहिए इस आज़ादी बाँटती देवी के दर्शन
आ मेरे पंजाब के जलते हुए मोगे[2] को देख

तुम्हारे पकड़े जाने पर जो गा रहे थे हमदर्दी के मरसिए
बहुत मचाते थे जो याहिया ख़ाँ के जुल्मों का शोर
पुतले जो लोकतंत्र के, उनकी जेलों के भीतर
आ तुम्हें सुँघा दूँ, जलते हुए यौवन की गंध

न हमने जीता है युद्ध, और न हारे पाकिस्तानी कहीं
यह तो पापी पेट थे जो पुतलियाँ बनकर थे नाचे
अभी तो बस पेट ही पेट हैं, आदमी पूरे नहीं
अभी न दुश्मन हैं हम, न किसी के हैं सगे

अभी तो जंगबाज़ों की टोली, चुहल कर रही
जलाकर ढाका को, बहले आग के फूलों से
इसे कविता जगाती है, छंब[3] किनारे खंडहरों में
इश्क होता है, धुँधुआई धरती के होंठों से

न तो वे मर्दे-मुजाहिद, न वे कैदी जंग के
न उन्होंने लूटी इज्जतें, न उन्होंने फेंके हथियार
न पैर उनके पास, न शीश उनकी गर्दनों पर
क्या उन्होंने हारना और क्या उन्होंने जीतनी है जंग

उनकी ख़ातिर तुम क्यों नहीं बोलते अहमद सलीम
जिस्म जो अत्याचारियों के हुक्म में बँधे पड़े
तड़पते हुए जो चले गए अपने परिवारों से दूर
तड़पते हैं आज वे भी भारत में बँधे हुए

हर दूसरे-तीसरे दिन जब फुंकारता है रेडियो
भागते हुए पेट कुछ टकराए संगीनों से
क्यों तुम्हारी दयालु कलम कभी रोई नहीं
क्यों तुम्हारे कोमल ख़यालों में नहीं आता भूकंप

तुम्हारी वह हमदर्दी भरी आत्मा कहाँ गई
या है तुम्हें खौ.फ़, टूटे न भारत में तुम्हारा मान
जो तुम्हें ऐलानते थे, पैगम्बर सच का
अब कहीं कह न दें, एक नाशुक्र मुसलमान

मैं नहीं कहता मुहब्बत में पिघल जाया न करो
मैं नहीं कहता, टक्कर जुल्म से लिया न करो
मैं तो कहता हूँ जुल्म की जड़ों से पहचान करो
गरजते पत्तों पर थूककर लौट जाया न करो

आओ हम पेटों से कहें, सिरों की ख़ातिर लड़ें
बनकर पूरे जिस्म, अपनी किस्म की ख़ातिर लड़ें
फिर बनाकर जंगी कैदी, पूरी देंगे सज़ा
अभी तो बस यारो, बस अपने जिस्म की ख़ातिर लड़ें।

[1. पाकिस्तान के पंजाबी कवि अहमद सलीम के 1972 में पंजाब आने पर लिखी कविता
2. पंजाब का एक क़स्बा 3. भारत-पाक सीमा पर स्थित गाँव।]

उसके नाम

मेरी महबूब, तुम्हें भी गिला होगा मुहब्बत पर
मेरी ख़ातिर तुम्हारे बेकाबू चावों का क्या हुआ
तुमने इच्छाओं की सुई से जो उकेरी थी रूमालों पर
उन धूपों का क्या बना, उन छायाओं का क्या हुआ

कवि होकर कैसे बिना पढ़े ही छोड़ जाता हूँ
तेरे नयनों में लिखी हुई इक़रार की कविता
तुम्हारे लिए सुरक्षित होंठों पर पथरा गई है री
बड़ी कड़वी, बड़ी नीरस, मेरे रोज़गार की कविता

मेरी पूजा, मेरा ईमान, आज दोनों ही जख़्मी हैं
तुम्हारी हँसी और अलसी के फूलों पर नाचती हँसी
मुझे जब लेकर चले जाते हैं, तुम्हारी खुशी के दुश्मन
बहुत बेशर्म होकर खनकती है हथकड़ियों की हँसी

तुम्हारा दर ही है, जिस जगह झुक जाता है सिर मेरा
मै जेल के दर पर सात बार थूककर गुज़रता हूँ
मेरे गाँव में ही सत्व है कि मैं बिंध-बिंधकर जीता हूँ
मैं हाकिम के सामने से, शेर की तरह दहाड़कर गुज़रता हूँ

मेरी हर पीड़ा एक ही सुई की नोक से गुज़रती है
है लुटी शांति सोच की, क़त्ल है जश्न खेतों के
वे ही बन रहे हैं देखो तुम्हारे हुस्न के दुश्मन
जो आज तक चरते रहे हमारे खेतों का हुस्न

मैंने देखा है ओस से नहाते गेहूँ के बदन को

देखने पर मुझे उसके मुख पर आई लाज भी दिखी है
मैंने बहते खाल के पानी पर बिंधती देखी है धूप सूरज की
मैंने रात सपने में वृक्षों को चूमते देखा है

धरेक [1] के फूल पर गाती महक को मैंने देखा है
कपास के फूलों में ढलती टकसाल को मैंने देखा है
चोरों की तरह खुसर-पुसर करती चरियों को मैंने देखा है
सरसों के फूल पर ढलती शाम को मैंने देखा है

मेरा हर चाव इन फ़सलों की मुक्ति से जुड़ा है
तुम्हारी मुस्कान की गाथा है, हर किसान की गाथा
मेरी किस्मत है बस अब बदलते हुए वक़्त की क़िस्मत
मेरी गाथा है बस अब चमकती तलवार की गाथा

मेरा चेहरा आज तल्ख़ी ने ऐसा खुरदुरा बना दिया है
कि इस चेहरे पर आकर चाँदनी को खुजली-सी लगती है
मेरी ज़िंदगी के ज़हर आज इतिहास के लिए अमृत हैं
इन्हें पी-पीकर मेरी क़ौम को होश-सी आती है।

[1. वृक्ष का नाम।]

युद्ध : कुछ प्रभाव

1.

झूठ बोलते हैं
ये जहाज, बच्चो !
इनका सच न मानना
तुम खेलते रहो
घर बनाने का खेल...

2.

ठंडा चाँद देख रहा बिटर-बिटर
कोहरे में उतर रही हवाई छतरी
डोरियों में फँसी हुई लाश
आओ देखो
उन्होंने कीमत डाली है
पौष की चाँदनी की
आओ देखो—
उनके काम आई है
गरीब की जवानी...

3.

रेडियो से कहो
कसम खाकर तो कहे
धरती 'गर माँ होती है तो किसकी?
यह पाकिस्तानियों की क्या हुई?
और भारतवालों की क्या लगी?

4.

चोरो, ओ चोरो
अपनी लूट बाँटने के लिए
कहीं बाहर जाकर लड़ो
जाग ही न उठें कहीं घरवाले
सुना है
बुरी होती है भीड़ की पिटाई...

5.

वे रेडियो नहीं सुनते
अखबार नहीं पढ़ते
जहाज खेतों में ही दे जाते हैं ख़बर सार
हल को मुट्ठी में कसकर
वे केवल हँस देते हैं
क्योंकि वे समझते हैं
कि हल की फाल पगली नहीं
पगली तो तोप होती है
हम अँधेरे कोनों में
गुमसुम बैठे सोच रहे हैं
और पल भर में चाँद उगेगा
भुरभुरा-सा
लुटा-लुटा-सा
तो बच्चों को बताएँगे
इस तरह का चाँद होता है ?

उम्र

वे सो ही जाएँगे आखिर
रात को जागती हुई छोड़कर
चाँदनी थिरक उठेगी
ओस भींगी धरती पर
रात लुढ़कती जाएगी
सपनों की पहाड़ी से...

जब नज़रें छिपाएँगे
बिस्तर शर्म के मारे
हथेली से फिसल जाएगा
गुलाबी फूल प्रभात का...

वे मेरे गीत लेकर फिर
अपना हुनर पा लेंगे
समय की ओट में
उनके चेहरे बीतते जाते
वे रोज फिक्रों के धक्के से रेंगते जाते...

संकट के पल

ऐ संकट के पल!
मैं चला हूँ उँगलियों में पकड़कर
अपने अनंत के अनछुए टुकड़े
तुम्हारे वर्तमान के छल्ले से गुजारने के लिए
तुम्हारे नाम में से तुम्हें पैदा करने के लिए...

ऐ संकट के पल!
यहाँ एक नदी है आवाज़ों की
जिसमें मेरी कविताएँ डूब गईं
तुम्हारा और मेरा सांझा अतीत गल गया है
एक कागज की नाव की तरह...

ऐ संकट के पल!
यहाँ खुश्क धूल उड़ती है वीरान रास्तों पर
और धूल में उड़ जाते हैं

उम्र के वर्ष
अंतरिक्ष में लकीर न तुम डाल सकोगे, न मैं
और अपना यही रिश्ता है
लेकिन मुझे महसूस करने दो तुम
अपने जिस्म में हो रही इतिहास की पीड़ा
मेरी खुरदुरी हथेली पर
तुम अपना 'कुछ नहीं' रख दो
मैं तुम्हारे लटकते धड़ को
यह अपने पाँव भेंट करता हूँ...

ऐ संकट के पल!
आज दरवाजे पर बंदनवार बाँधो
मैं तुम्हारी चुप को सुनने आया हूँ
तुम्हारे शून्य को जीने आया हूँ।

इंतज़ार

नहीं, यह बात तो कभी न होगी
कि तारे ही बहला देंगे महबूब का दिल
हो सकता है
रातों का ज़हर कम हो जाए
जब अँधेरा जीता जा चुका होगा...
फिर शायद सिगरेट से अंतस को झुलसाने की
ज़रूरत न रहे
शायद आवारगी की जिल्लत कम हो जाए
ख़त्म हो जाए बेचारगी का दर्द...
शायद उम्र के सफे पर
गलतियाँ लगाने की मुश्किल, इतनी गहरी न रहे
हो सकता है

नफरत में भागने का संकट न रहे
और अपने चेहरे को पहचान कर
अपना कह सकने की शर्म न रहे...

इंतज़ार तो शायद
कभी भी ख़त्म न हो।

बस कुछ पल और

बस कुछ पल और
तेरे चेहरे की याद में
बाकी तो सारी उम्र
अपने ही नक्श खोजने से फुरसत न मिलेगी

बस कुछ पल और
यह सितारों का गीत
फिर तो आसमान की चुप
सब कुछ निगल ही जाएगी...

देख, कुछ पल और
चाँद की चाँदनी में चमकती
यह तीतरपंखी बदली
शायद मरुस्थल ही बन जाए
ये सोए हुए मकान
शायद अचानक उठकर
जंगल की ओर ही चल पड़ें...

कल

सच
मेरी जीभ पर जल रहा है प्रिये
मुट्ठी-भर झूठ का सहारा दे दो
कि मैं तुम्हें प्यार कर लूँ

चलो, आज रात
हवा की और जिस्मों की मुँहरखाई[1] *ही सही*
कल
मैं इस दर्द को कह लूँगा
कल
तुम इसे गलती कह लेना...

[1. बात रखना।]

तुझसे

तुझसे दिल का सच कहना
दिल की बेअदबी है
सच की बेअदबी है
तुझसे ग़िला करना इश्क की हेठी है
जा, तू शिकायत के क़ाबिल होकर आ
अभी तो मेरी हर शिकायत से
तेरा क़द बहुत छोटा है

कभी भी गल सकती है
मेरे लहू के दरिया में
अदाओं की यह घिसी हुई किश्ती
किसी भी वक़्त
तूफानों की कसम खा सकती है
मेरे दिल की धरती

यह दर्द पथरीला होता है
ज़िंदगी-जैसा
ज़िंदगी जो गुलशन नंदा का नावेल नहीं
पहाड़ी सड़क की तरह मुश्किल होती है।

गीत-1

अंबर पर न चाँद न घटा
आँगन में फूल न हवा
दिल मेरा कहाँ गया
दिल मेरा कहाँ गया
पलों के प्रौढ़ होते क़ाफ़िले की परवाह न की
दर्दों के चौड़े होते फ़ासले की परवाह न की
मौसमों का खा लिया दगा
मौसमों का खा लिया दगा

यार मेरे सूरजों की जड़ों में जाकर बैठ गए
मौसम के दुखांत को वे और आगे ले गए
पाँवों में झुका लिया ख़ुदा
पाँवों में झुका लिया ख़ुदा

न बहुत देर टुकड़े तमन्ना के उठाए

न बहुत देर खिड़कियों में फूलदान सजाए
हँसी को करा लिया ज़िबह
हँसी को करा लिया ज़िबह

भगोड़ा बनने न देना दिल चंदरे को आज
तोड़ देनी चाबियाँ— गुम हुए ताले की आज
सुनी हमने चुप की सदा
सुनी हमने चुप की सदा
अंबर पर चाँद न घटा
सुनी हमने चुप की सदा
पाँवों में झुका लिया ख़ुदा
हँसी को करा लिया ज़िबह
दिल मेरा कहाँ गया।

गीत-2

कौन दे धरवास[1]
खड़े होकर पास
है भुर गए बताशे जैसा
जीवन का इतिहास—

मिट्टी में मिट्टी हुआ
मिट्टी जैसी खेलें
मुझसे रूठा रूठा मेरा
बचपन चला गया ऐसे
जैसे रूठा हो महबूब
न करे हंगामा
और मन का आँगन रहे उदास
कौन दे धरवास

खड़े होकर पास

उम्र के दरख़्त से लंबी हो गई
फ़िक्रों की परछाइयों ने
मुझे रेशम की तरह खा लिया
लोहे की घटनाओं ने।

[1. सांत्वना।]

गीत–3

पाँव की मिट्टी, पहाड़ बन जाना
तिनकों की झोंपड़ी, मीनार बन जाना
अपनी कमाई सम्हाल रखना
ओ किरती की झोंपड़ी...

लाख लाख का तेरा तिनका
ओ किरती की झोंपड़ी
युगों की सृष्टि तुम्हारे तिनकों में खेलती
सदियों से आई गुलामी तुम झेलती

हो जा होशियार, आई है बहार
अब मिला अंबरों से आँख
ओ किरती की झोंपड़ी...

उठ तेरे वारिसों का आ गया ज़माना
हवाओं में गूँजा आज़ादी का तराना
जनता उठाए हथियार आज बाँधकर कतार
लेनी दुश्मनों की कतार उन्होंने रोक
ओ किरती की झोंपड़ी...

कई तेरे वारिसों ने दी ज़िंदगी वार
जिस रास्ते पर गया था सराभा करतार
वही बन गया रास्ता, सारी दुनिया गवाह
कोई पूछ ले हाक़िमों से बेशक
ओ किरती की झोपड़ी...

कल बाबा बुड्ढा [1] मारा एक पुलिस ने
सीने में गोली खाई बाबू दं दलीप [1] ने
पूरी की है रस्म, दयासिंह [1] की कसम
बात रही न हुकूमतों के वश
ओ किरती की झोंपड़ी...

युगों तक रहेंगी यह गाथाएँ मशहूर
लिखे इतिहास जो गाँव दद्दाहूर [2]
बाजों वाले की कटार, आज रही ललकार
उसने काट काट देने दुश्मन रख
ओ किरती की झोंपड़ी...

झोंपड़ी री अब पासबान तेरे जाग उठे
जागे तेरे खेत, किसान तेरे जाग उठे
खोली आँख मज़दूर, अभी जाना बहुत दूर
उसने छीनना अभी ज़ालिमों से हक री
ओ किरती की झोंपड़ी...

पैरों की मिट्टी पहाड़ बन जाना
तिनकों की झोंपड़ी, मीनार बन जाना
अपनी कमाई सम्हाल रखना
ओ किरती की झोंपड़ी...
लाख लाख का तेरा तिनका
ओ किरती की झोंपड़ी...

[1. पंजाब में पुलिस के हाथों मारे गए विभिन्न कम्युनिस्ट क्रांतिकारी 2. पंजाब का एक गाँव, जहाँ पुलिस ने बहुत अत्याचार किए थे।]

गीत-4

सोने की सवेर जब आएगी ओ साथी
अंबर नाचेगा धरती गाएगी ओ साथी

मेहनतों का मोल ख़ुद आँकेंगे लोग
धरती पर स्वर्ग बनाएँगे लोग
एक सी खुशी होगी सबके जीने के लिए
बचेगा न शोषक कोई लहू पीने के लिए
लाल झंडा लहराएगा ओ साथी

कोई फुटपाथ पर भूखा नंगा न सोएगा
सबके लिए जीने का सामान होगा
किसी की कँवारी इच्छाएँ न कुचली जाएँगी
ग़रीब के दिल पर आरियाँ न चलेंगी
डरेगा न कोई न कोई किसी को डराएगा ओ साथी

भूखा किसी माँ का बच्चा न रोएगा
सबके साथ इंसाफ होगा
युगों से कुचले ज़िंदगी में आएँगे
जनता के दुश्मन पूरी सज़ा पाएँगे
तगड़ा कमज़ोर को न सताएगा ओ साथी

वैर-भाव और जलन ख़त्म हो जाएगी
मज़हबों की दीवार टूट जाएगी
दुनिया पर एक ही जमात होगी
रोज़ ही दीवाली की रात होगी
पेट भर-भर खाएँगे कमानेवाले ओ साथी
सोने की सवेर जब आएगी ओ साथी
अंबर नाचेगा धरती गाएगी ओ साथी।

[नोट- गीतों का अनुवाद कभी भी वह आनंद नहीं दे पाता, जो उसका मूल रूप व लय है। —अनुवादक]

तूफान कभी मात नहीं खाते

हवा का रुख़ बदलने से
बहुत उछले, बहुत कूदे
वे जिनके शामियाने डोल चुके थे
उन्होंने ऐलान कर दिया
अब वृक्ष शांत हो गए हैं
अब तूफान का दम टूट गया है—

जैसे कि जानते ही न हों
ऐलानो का तूफानों पर
कोई असर नहीं होता
जैसे कि जानते ही न हों
वह उमस बहुत गहरी थी
जहाँ से तूफान ने जन्म लिया
जैसे कि जानते ही न हों
तूफानों की वजह
वृक्ष ही नहीं होते
वरन् वह घुटन होती है
धरती का मुखड़ा जो
धूल में मिलाती है
ओ श्रमपुत्रो, सुनो
हवा ने दिशा बदली है
हवा बंद हो नहीं सकती

जब तक कि धरती का मुखड़ा
टहक गुलज़ार नहीं बनता
तुम्हारे शामियाने आज गिरे
कल गिरे
तूफान कभी भी मात नहीं खाते।

मेरे देश

हम तो ख़त्म हो गए हैं
धूल में लथपथ संध्यायों के पेट में
हम तो छिप गए हैं
लिपे हुए गोबर पर उकेरी हुई उँगलियों के साथ
'लोकतंत्र' के पैरों में नष्ट होते हुए मेरे देश!
हमारी चिंता न करना
प्रश्न तो ठीक बड़ा है
कि छब्बीस वर्षों के इस सूखे के समय
हम देशभक्त क्यों न बने
लेकिन मिट्टी ने खा ली है
कई करोड़ बाजुओं की ताकत
और फलों ने खा ली है
किसानों के हिस्से की ऊर्जा
हमारे सम्मान के वृक्ष
जिन्होंने फैलकर करनी थी
तुम्हारे तपते मरुस्थलों पर छाया
दफ्तरों में पल रहे साँडों ने मरोड़ दिए
मेरे देश, क्या हो सकता था
छब्बीस वर्ष के इस छोटे-से
लंबे समय में
जबकि तीन बार दी गई हो जबाड़े फाड़कर
मारक युद्धों की नाल
और हर दूसरे वर्ष चुनाव की दुकान डालकर
निश्चित कर दी जाए हमारे बिकने की शक्ति
मेरे देश, क्या हो सकता था ऐसे बुरे समय में
कि जब जिस्मों पर आता है फूल खिलने का मौसम
तभी हमारे ज़ेहन से रेत बिखरती है...

'लोकतंत्र' के पाँवों में नष्ट होते मेरे देश
हमें कितना हो सकता है
तुम्हारे दु:खों का इल्म?
हम तो अभी ढूँढ़ रहे हैं
पशु और इंसान में .फर्क
हम कुत्तों में से जुएँ पकड़ते हुए
सीने में पाल रहे हैं
उस सर्वशक्तिमान की रहमत
हमारे रोज़ की फ़िक्रों की भीड़ में
गुम हो गई है
आदर्श जैसी पवित्र चीज़
हम तो उड़ रहे हैं आँधियों में
सूखे हुए पत्तों की तरह...

हम काही की तरह
तुम्हारी बे-आबाद ज़मीन में चुपचाप उग आए
और लट-लट जल रहे आकाशों के नीचे
कड़वा धुआँ बनकर फैल गए
और अब यदि तुम्हारे वेदों का .फलसफ़ा
और ऋषियों के उपदेश धुँधुआ जाएँ
तो दोष हमारा न होगा....
मेरे देश, तुम कुछ भी न कर सके
और हमारा बीजा हुआ इतिहास
कुछ आवारा पशु-झुंड चरते हुए
तुम्हारे पोखर का पानी पीते रहे

अब जब तुम्हारे बारे में सोचें, मेरे देश!
तो कुछ इस तरह लगता है
जैसे तुम शरी.फ बेटी हो
किसी बेशर्म गुंडे की
और हमारे साथ तुम्हारा ऐसे लगता है रिश्ता
जैसे आँखों ही आँखों में मुहब्बत भर जाए कोई
और जिसके नसीब में न हो शब्द मिलन का

हम तो ख़त्म हो गए हैं
धूल में लथपथ संध्याओं के पेट में
हम तो छिप गए हैं
लिपे हुए गोबर पर उकेरी उँगलियों के साथ
'लोकतंत्र' के पैरों में नष्ट होते मेरे देश!
हमारी चिंता न करना...

पुलिस के सिपाही से

मैं पीछे छोड़ आया हूँ
समंदर रोती बहनें
किसी अनजान भय से
बाप की हिलती दाढ़ी
और सुखों का वर माँगती
बेहोश होती मासूम ममता को
मेरी खुरली पर बँधे
बेज़ुबान पशुओं को
कोई छाया में न बाँधेगा
कोई पानी न देगा
और मेरे घर में कई दिन
शोक में चूल्हा न जलेगा

सिपाही बता, मैं तुम्हें भी
इतना ख़तरनाक लगता हूँ?
भाई सच बता, तुम्हें
मेरी छिली हुई चमड़ी
और मेरे मुँह से बहते लहू में
कुछ अपना नहीं लगता?

तुम लाख दुश्मन-कतारों में
बढ़-चढ़कर शेखियाँ बघार लो
तुम्हारे निद्रा-प्यासे नयन
और पथराया माथा
तुम्हारी फटी हुई निक्कर
और उसकी जेब में
तंबाकू की रच गई जहरीली गंध
तुम्हारी चुगली कर रहे हैं
'गर नहीं सांझी तो बस अपनी
यह वर्दी ही नहीं सांझी
लेकिन तुम्हारे परिवार के दुःख
आज भी मेरे साथ सांझे हैं

तुम्हारा बाप भी जब
सिर से चारे का गट्ठर फेंकता है
तो उसकी कसी हुई नसें भी
यही चाहती हैं
बुरे का सिर अब किसी भी क्षण
बस कुचल दिया जाए
तुम्हारे बच्चों को जब भाई
स्कूल का खर्च नहीं मिलता
तो तुम्हारी अर्द्धांगिनी का भी
सीना फट जाता है

तुम्हारी पी हुई रिश्वत
जब तुम्हारा अंतस जलाती है
तो तुम भी
हुकूमत की साँस-नली बंद करना चाहते हो
जो कुछ ही वर्षों में खा गई है
तुम्हारी चंदन-जैसी देह
तुम्हारी ऋषियों-जैसी मनोवृत्ति
और बरसाती हवा-जैसा
परिवार का लुभावना सुख

तुम लाख वर्दी की ओट में
मुझसे दूर खड़े रहो
लेकिन तुम्हारे भीतर की दुनिया
मेरी बाजू में बाँह डाल रही है
हम जो बिना संभाले
आवारा रोगी बचपन को
आटे की तरह गूँथते रहे
किसी के लिए ख़तरा न बने
और वे जो हमारे सुख के बदले
बिकते रहे, नष्ट होते रहे
किसी के लिए चिंता न बने
तुम चाहे आज दुश्मनों के हाथ में
लाठी बन गए हो
पेट पर हाथ रखकर बताओ तो
कि हमारी जात को अब
किसी से और क्या ख़तरा है ?
हम अब सिर्फ़ उनके लिए ख़तरा हैं
जिन्हें दुनिया में बस ख़तरा ही ख़तरा है

तुम अपने मुँह की गालियों को
अपने कीमती गुस्से के लिए
संभालकर रखो—
मैं कोई सफेदपोश
कुर्सी का बेटा नहीं हूँ
इस अभागे देश का भाग्य बनाते
धूल में लथपथ हज़ारों चेहरों में से एक हूँ
मेरे माथे से बहती पसीने की धारा से
मेरे देश की कोई भी नदी बहुत छोटी है
किसी भी धर्म का कोई ग्रंथ
मेरे जख़्मी होंठों की चुप से अधिक पवित्र नहीं है
तुम जिस झंडे को एड़ियाँ जोड़
सलामी देते हो
हम शोषितों के किसी भी दर्द का इतिहास
उसके तीन रंगों से बहुत गाढ़ा है

और हमारी रूह का हर एक ज़ख़्म
उसके बीच के चक्र से बहुत बड़ा है
मेरे दोस्त, मैं तुम्हारे कीलोंवाले बूटों तले
कुचला पड़ा भी
माउंट एवरेस्ट से बहुत ऊँचा हूँ

मेरे बारे में तुम्हारे कायर अफसर ने
गलत बताया है
कि मैं इस हुकूमत का
मारक महादुश्मन हूँ
नहीं, मैंने तो दुश्मनी की
अभी पूनी भी नहीं छुई है
अभी तो मैं घर की मुश्किलों के सामने
हार जाता हूँ
अभी तो मैं अमल के गढ़े
कलम से ही भर देता हूँ
अभी मैं दिहाड़ियों और जाटों के बीच की
लरजती कड़ी हूँ
मेरी दाईं बाजू होकर भी अभी तुम
मुझसे बेगाने लगते हो
अभी तो मुझे
हज्जामों के उस्तरे
खंजर में बदलने हैं
अभी राज-मिस्त्रियों की करंडी पर
मुझे चंडी की वार लिखनी है
अभी तो मोची की सुम्मी
ज़हर में भिगोकर
चमकते नारों को जन्म देनेवाली कोख में घुमानी है

अभी धुम्मे बढ़ई का
भभकता धधकता हुआ तेसा
इस शैतान के झंडे से
ऊँचा लहरना है
अभी तो आने-जानेवालों के

जूठे बर्तन माँजते रहे लागी
जुबलियों में— लाग लेंगे
अभी तो किसी कुर्सी पर बैठे
गीध की नरम हड्डी को जलाकर
'खुशिया' चूहड़ा हुक्के में रखेगा

मैं जिस दिन सातों रंग जोड़कर
इंद्रधनुष बन गया
दुश्मन पर मेरा कोई वार
कभी खाली न जाएगा
तब झंडीवाली कार के
बदबूदार थूक के छींटे
मेरी ज़िंदगी के चाव भरे
मुँह पर न चमकेंगे
मैं उस रोशनी के बुर्ज तक
अकेला नहीं पहुंच सकता
तुम्हारी भी ज़रूरत है
तुम्हें भी वहाँ पहुँचना होगा

हम एक काफ़िला हैं
ज़िंदगी की तेज खुशबुओं का
तुम्हारी पीढ़ियों की खाद
इसके चमन में लगी है
हम गीतों-जैसी गजर के
बेताब आशिक हैं
और हमारी तड़प में
तुम्हारी उदासी का नगमा भी है

सिपाही बता, मैं तुम्हें भी
इतना ख़तरनाक लगता हूँ?
मैं पीछे छोड़ आया हूँ...

सेंसर होनेवाले ख़त का दुखांत

तुम्हारे और मेरे बीच
सेंसर होनेवाला चाहे कुछ भी नहीं
लेकिन तुम्हारा ख़त जब तड़पेगा ज़हालत की हथेली पर
बहुत होंगे अर्थों के अनर्थ—

तुम्हारे रब्ब पर विश्वास के अर्थ
पुलसिया कुछ और निकालेगा
तुम्हारे बहुत देर से न मिलने के गिले को
वह समझेगा
ढीले हो रहे अनुशासन के लिए अफसोस
और उन हसीन पलों के उदास ज़िक्र को
जो ग़र्क हो गए
अश्विनी कुमार [1] के घोड़े के पीछे उड़ी धूल में
उस उदास ज़िक्र को
शहीद हुए साथियों की याद में विलाप समझेगा

तुम्हारे महँगाई के रोने को
क्रांतिकारियों की बदली हुई नीति का संकेत जानेगा
और बंगला देश में मारे गए
तुम्हारे फौजी भाई का दुःख
चीन की हिमाकत करना माना जाएगा
तुम्हें क्या पता है, कैसे बीतेगी
जब होंगे अर्थों के अनर्थ
तुम्हारा ख़त ब ... हु ...त तड़पेगा
ज़हालत की हथेली पर।

[1. सातवें दशक में पंजाब पुलिस के आई.जी., जिनके कार्यकाल में गांवों में भारी पुलिस-अत्याचार हुए।]

हर रोज़ ही ऐसे होता है

हर रोज़ सहज ही उग आती है
पतझड़ की सघन धूप
चूल्हों का धुआँ छतों पर एक सही नक्शा बनाता है
मनुष्य के भीतर के देश का
जिस पर से सचमुच कुछ भी कुर्बान किया जा सकता है
हर रोज़ सहज ही काम खनक उठते हैं
और सारी धरती कान बन जाती है
उस कुँवारी की तरह
आसमान जैसे नयन
जो मूँदकर
सुनती है
सहज-सहज टपकता
पहले मासिक धर्म का दर्द
हर रोज़ ही ऐसे होता है
गृहिणियों के सिरों पर बिना हिलती नाश्ते की टोकरी
हवाओं में बनती चली जाती है
इतिहास जैसी टेढ़ी-मेढ़ी लीक
हर रोज़ ही बैलों के मसूड़ों में तैरता है
भूसे के मोटे डंठलों का सहमा स्वाद
किसी बीमारी से मरी
पालतू मुर्गी की सब्जी गले में फँसती है

हर रोज़ ही कुत्तों की आँखों से मर जाती है आस
हर रोज़ एक ही समय उठता है
किसान के कुत्ते के पेट में
अंतिम कौर का फिक्र
हर रोज़ ही ऐसे होता है

हर रोज़ ही दबा देती हैं बेटियाँ
गीले गोबर में
कच्ची कुँवारी ज़िंदगी की आग
कुम्हार का चाक रोज़ ही मिट्टी से उभारता है
ज़िंदगी की चिनाब में बह गई सोहनी [1] के नक्श
हर रोज़ ही जुओं को कोसते बूढ़े
बीच में ही भूल जाते हैं सुखमनी साहिब की पौड़ी [2]
हर रोज़ ही रह-रहकर लहू थूकती रही
हज्जाम से टाँगें मुँडवाते छड़ों [3] की गंदी ज़ुबान
हर रोज़ ही ऐसे होता है
हर रोज़ ही
मुझे सब कुछ भुने कबाब जैसा लगता है
जो अभी मेज़ों पर परोसा जाएगा
कुर्सी के खाने के लिए...

[1. प्रसिद्ध लोककथा 'सोहनी महिवाल' की नायिका 2. धार्मिक वाणी 3. कुँवारे।]

काँटे का जख़्म

(उस आदमी के नाम जिसके जन्म से कोई संवत् शुरू नहीं होता)

वह बहुत देर तक जीता रहा
ताकि उसका नाम रह सके

धरती बहुत बड़ी थी
और उसका गाँव बहुत छोटा
वह सारी उम्र एक ही झोंपड़ी में सोता रहा
वह सारी उम्र एक ही खेत में हगता रहा
और चाहता रहा
कि उसका नाम रह सके

पूरी उम्र में उसने सिर्फ़ तीन ही आवाज़ें सुनीं
एक मुर्गे की बाँग थी
एक पशुओं के घुरकने की
और एक अपने ही मसूड़ों में रोटी चुभलाने की
टीलों की रेशमी रोशनी में
सूर्यास्त की आवाज़ उसने कभी न सुनी
बहार में फूलों के चटखने की आवाज़ उसने कभी न सुनी
सितारों ने भी कभी उसके लिए कोई गीत न गाया
पूरी उम्र वह सिर्फ़ तीन ही रंगों से वाकिफ़ रहा
एक रंग ज़मीन का था
जिसका नाम उसे कभी न आया
एक रंग आसमान का था
जिसके बहुत-से नाम थे
लेकिन कोई भी नाम उसकी जीभ पर न चढ़ता था
एक रंग उसकी औरत के गालों का था
जिसका नाम लजाते हुए उसने कभी न लिया

मूलियाँ वह जिद से खा सकता था
बढ़कर भुट्टे चबाने की शर्त उसने कई बार जीती
लेकिन वह ख़ुद बिना शर्त ही खाया गया
पके खरबूजों-जैसे उसकी उम्र के साल
बिना चीरे ही निगले गए
और कच्चे दूध-सी उसकी सीरत
बड़े स्वाद से पी ली गई
उसे कभी पता भी न चल सका
वह कितना सेहतमंद था
और यह लालसा कि उसका नाम रह सके
शहद की मक्खी की तरह
उसके पीछे लगी रही
वह ख़ुद अपना बुत बन गया
लेकिन उसका बुत कभी भी जश्न न बन सका

उसके घर से कुएँ तक का रास्ता
अभी भी सजीव है

लेकिन अनगिनत कदमों के नीचे
उसके कदमों के निशान दब गए हैं
अभी भी एक काँटे का ज़ख़्म हँसता है
अभी भी एक काँटे का ज़ख़्म हँसता है।

जहाँ कविता ख़त्म होती है

(अपने गाँव के अनपढ़ लड़कों के नाम)

उछल-कूद की उम्र में
जो हल के पीछे लगकर
आप खुच्चों[1] का काम कर लेते हो
और कोमल सपनों को
बदबू भरे कुर्ते के साथ
बाड़ पर टाँग देते हो
कौन लगा सकता है आपकी जीभ को ताला
आप दहाड़ोगे ठर्रे का घूँट पीकर
आप नंगेज निकाल दोगे शब्दों से
आप जा टपकोगे राजा-रानी की कहानी में
फूलों के वजन तौलती राजे की उस बेटी तक
लाठी लगा आगे ले जाने के लिए
केवल चार फेरों के बदले—
जो क़िस्मतों से संघर्ष की शर्तें रखती है
मेरे दोस्तो, क्या कहूँ
बड़ा पुराना है सवालों का वृक्ष
और इसके पत्तों से लाड़ कर रही है
राजनीति की हवा
और बाकी सब कुछ छोड़ दिया गया है
कुदालों, कुल्हाड़ीवालों की अक्ल पर...
वैसे तो एक सवाल यह भी है

कि सपनों के उड़ रहे राकेट के
साथ-साथ क्यों चलती मसूर की दाल?
और यह भी कि
क्यों उभर आता है सपनदोष के समय
पिछले साल मर गई पड़िया का बिंब
माफ करना मेरे गाँव के यारो
कविता लिखने वाला यह पढ़ाकू लड़का
आपके मसले हल नहीं कर सकता

पाँच बार जेल हो आना
या दूर शहरों के मंचों पर
पुलिस के खाए डंडों का ज़िक्र करना
आपकी जल रही दुनिया के लिए
एक सूखे पोखर-जैसा है

कविता आपके लिए
विपक्षी पार्टियों के बेंचों-जैसी है
जो हमेशा आग-आग का शोर मचाते हैं
और आग से खेलने की मनाही के
सामने हमेशा सिर झुकाते हैं
माफ करना मेरे गाँव के यारो
मेरी कविता आपके मसले हल नहीं कर सकती

मसलों की बात दोस्तो, कुछ ऐसी होती है
कि कविता बिल्कुल नाकाफी होती है
और आप बड़ी दूर निकल जाते हैं—
तीखी चीज़ों की तलाश में
मसलों की बात कुछ ऐसी होती है
कि आपका सब्र थप्पड़ मार देता है
आपके कायर मुँह पर
और आप उस जगह से शुरू करते हैं
जहाँ कविता ख़त्म होती है...

[1. घुटनों के पीछे का हिस्सा।]

साडे समियाँ विच

(1978)

इनकार

(कविता में भूमिका)

मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खेतों का बेटा होकर
आपके चगले हुए स्वादों की बात करूँगा
जिनकी बाढ़ में बह जाती है
हमारे बच्चों की तोतली कविता
और हमारी बेटियों की कंजकों-सी हँसी

मैं तो जब भी करूँगा— खाद की कमी
किसी ग़रीब के सीने की तरह पिचक गए
ईख की ही बात करूँगा
मैं दालान के कोने में पड़ी रबी की फसल
और दालान के दर पर खड़े जाड़े की ही बात करूँगा
मुझसे उम्मीद न करना कि मैं सर्द ऋतु में खिलनेवाले
फूलों की किस्मों के नाम पर
गाँव की लड़कियों के उलटे-सीधे नाम रखूँगा

मैं बैंक के सेक्रेटरी की शरारती मूँछों
सरपंच की थाने तक फैली लंबी पूँछ
और जो मैंने अपने सीने पर पाल रखा है
उस पूरे चिड़ियाघर की
या उस अजायबघर की
जो मैंने अपने सीने में सँभाल रखा है
या इस तरह की ही कोई चुभने वाली बात करूँगा

मेरे लिए दिल तो बस एक पान के पत्ते-सा लोथड़ा है
मेरे लिए हुस्न मकई की नमक लगी रोटी-सी लज्जत है
मेरे लिए ज़िंदगी घर की शराब की तरह

छिप-छिपकर पीने की कोई चीज़ है
मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खरगोश की तरह
वक्षों की कोमल सुगंध को धीमे से सूँघता रहूँ
मैं जुते हुए बैलों की तरह हर चीज़ का
खुरली पर सीधा होकर सामना करता हूँ

मैं किसानों के साधु बनने से पहले का सफ़र हूँ
मैं बुड्ढे मोची की गुम हुई आँखों की रोशनी हूँ
मै लूले हौलदार के दाएँ हाथ की स्मृति हूँ बस
मैं वक़्त की देह पर चौथाई सदी का दाग हूँ बस
और मेरी कल्पना उस लुहार के जगह-जगह झुलसे मांस-जैसी है
हवा के एक झोंके के लिए
जो बेरहम आसमान पर खीझा रहे
जिसके हाथ में पकड़ा हल का फाल
कभी तलवार बन जाए कभी चारे की गठड़ी रह जाए बस
मैं आपके लिए अब किसी हार्मोनियम का पंखा नहीं हो सकता
मैं बर्तन माँजती झींवरी की उँगलियों से रिसता राग हूँ बस

मेरे पास सौंदर्य की इस सपन-सीमा से इधर
अभी बहुत बातें करने को हैं
अभी मैं धरती पर छाई
किसी दिहाड़ीदार के काले स्याह होंठों-सी रात की ही बात करूँगा
उस इतिहास की
जो मेरे बाप के धूप से झुलसे कंधों पर उकरा है
या अपनी माँ की पाँव-फटी बिवाइयों के भूगोल की ही बात करूँगा

मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खेतो का बेटा होकर
आपके चगले हुए स्वादों की कोई बात करूँगा
जिनकी बाढ़ में बह जाती है हमारे बच्चों की तोतली कविता
और हमारी बेटियों की कंजकों-सी हँसी।

जहाँ कविता ख़त्म नहीं होती

लड़को, मैं भी कभी तुम लोगों-जैसा ही था
छोटी-छोटी चोरियाँ करता हुआ भी चोर नहीं था
बात-बात पर बहाना बनाता था, पर मैं झूठा नहीं था
चाहे रोज ही कपड़े फाड़ देता था, पर नंगा नहीं समझा जाता था
बूढ़ी पुन्नी का चरखे का टेढ़ा तकला हमेशा मेरे ही सिर लगता था
लेकिन थाने की किताबों में मेरा नाम नहीं लिखा जाता था
घर के चौके की छोटी-सी मुंडेर
या बिनौलों की बोरी या पड़ोसियों की सीढ़ी के नीचे के खाने
मेरे छिपने के लिए काफी थे
मैं तितलियों को सूई में पिरोकर नाचता था
सोन-चिरैयों को धागे के पटे से हाँकता था
लेकिन कभी हिंसावादी नहीं कहलाया
बस, बिल्कुल तुम लोगों-जैसा था

फिर ऐसे हुआ— धीरे-धीरे मैं तुम लोगों-जैसा न रहा
मुझे बताया गया कि झूठ बोलना पाप है
शिक्षा मनुष्य की तीसरी आँख है
चोरी करना बुरा है
ईश्वर एक है
सभी मनुष्य बराबर होते हैं—
मैं इन सभी वाक्यों के
अजीबोगरीब आपसी संबंधों के सामने सहम-सा गया
मुझे लगा— मेरे खिलाफ
कोई बहुत भयानक षड्यंत्र शुरू होनेवाला है

मैंने घबराकर तुम्हारे हाथों से हाथ खींच लिया
और उदास होकर दौड़ता हुआ, किताबों की
कँटीली झाड़ियों में फँस गया

काले-काले अक्षर तीखे शूलों की तरह, मेरे बदन में उतरते गए
मैं जैसे झाड़ियों में छिपता फिरता कोई खरगोश था
जिसके पीछे लगे हुए थे परीक्षाओं के शिकारी कुत्ते

मैं कुछ परेशान-सा हो गया, जब मुझे पता चला
कि यहाँ तो पूरब है या पच्छिम
कहीं भी न कुछ उदय होता है न अस्त होता है
जब मुझे पता चला रब्ब रात-बिरात
हमारे खरबूजों में चीनी डालने नहीं आता
न ही हमारी कपास के टीण्डों को
चोगा माँगते नन्हे पक्षियों की चोंचों की तरह खोलने
जब मुझे पता चला कि धरती रोटी-जैसी नहीं, गेंद-जैसी है
आसमानों में नीला-सा दिखता शून्य है, रब्ब नहीं
जब मुझे पता चला, शिक्षा मनुष्य की तीसरी आँख नहीं
वरन दो ही आँखों का भेंग है—
और ऐसी बेशुमार बेमज़ा बातों का पता चला
मेरे भीतर कहीं कुछ गिरकर टूट गया था
और एक 'तड़ा...क्'-सी आवाज़ पर मैंने देखा
मेरी अंतड़ियों में रंगों और रहस्योंवाली
विचित्र कविता के टुकड़े गड़े हुए थे

फिर लड़को, तुम कौन और मैं कौन था
फिर मैं खूबसूरत कोठियों और बाज़ारों को
हसरत भरी-सी नज़रों से देखता हुआ भी चोर समझा गया
पेंजे जाने के दर्द में कराहते हुए को भी 'पाखंड' ही कहा गया
अच्छे-खासे कपड़ों पर भी नज़रें ऐसे उठीं
जैसे अलफ नंगा हूँ...
अपने बारे में कुछ भी कहने पर तोहमतों से बींधा गया
जब मैंने झूठ, चोरी, मेहरबान ईश्वर
और सब मनुष्यों के बराबर होने की धारणाओं पर
'दोबारा सोचना' चाहा तो मेरे इस तरह सोचने को
हिंसा कहा गया—
यारों के तहखाने-जैसे चौबारे
घने कोहरे-सा मेरी महबूब का हृदय

और घटाटोप ईख भी मुझे छिपा न सके
मैं जो छिप जाता था घर के चौके की छोटी-सी मुंडेर
या बिनौलों की बोरी या पड़ोसियों की सीढ़ी के नीचे खानों की ओट में

और अब मैं बिल्कुल उनके सामने हूँ
बिना उद्घाटित पुलों की तरह
बिना पी हुई शराब या अनछुई छातियों की तरह
फिर वे आए... सच्चाइयों के झंडाबरदार
उनके हाथों में व्यवस्था का टोका[1] था
बस तभी मुझे तथ्यों के तथ्य का ज्ञान हुआ
कि टोके की शक्ल झंडे-सी होती है

लड़को, मेरा सच न मानना— 'गर कहूँ—
सिर्फ़ कपड़े का टोका छील सकता है इंसानी सीनों की भीतरी गूँज को
'गर कहूँ— हर सच्चाई सिर्फ़ छिली हुई आह होती है
'गर कहूँ— पंद्रहवें के बाद
हर वर्ष शमशान से उठती भाप का गुब्बार होता है

लड़को, मैं अब तुम्हारे में से नहीं हूँ
मैं चील के पंजों में उड़ रहा आज़ाद चूहा हूँ
झुटपुटे की चुभलाई आँख हूँ
इतिहास के ताला लगे दरवाजे पर बैठा मेहमान हूँ
बारहमासा से वर्जित कोई कुसगुन हूँ
जिससे कुछ भी शुरू या ख़त्म नहीं होता
कविता नहीं, मेरी आवाज़ केवल गंदगी पर बरसती वर्षा है
तुम्हारे लिए न आशीष न नसीहत
मेरे शब्द धुलाई करते हुए भी बदबू फैला रहे हैं...

असल में लड़को, मैं बहुत दहल गया हूँ इस भयानक यातना से
कि आजकल पहाड़ों पर चढ़ना भी ऐसे लगता है
जैसे किसी लंबी ढलान से उतर रहा होऊँ
सागर की छाती पर तैरना ऐसा है
जैसे डूबने की बहुत धीमी-सी क्रिया हो
यह कैसी यातना है ?

कि आप लड़कियों, फूलों और पक्षियों को देख रहे हों
और सामने शून्य ही शून्य, आपकी आँख में मिर्च की तरह लड़े
मैं पूरे का पूरा थक गया हूँ
इस मशीनी-सी अफरा-तफरी में चलते हुए
जहाँ रिश्ते अंधे वेग में, अपने अर्थों से टकरा गए हैं
मैं— जो सिर्फ़ एक आदमी बनना चाहता था
यह क्या बना दिया गया हूँ ?

और अब मैं चाहता हूँ, सड़क पर जा रहे किसी मॉडल स्कूल
के रिक्शे पर
'छड़प्प' से चढ़ जाऊँ और टाफी चूसता हुआ
इस बिखरे-बिखरे फैले संसार को, मासूम-सी नज़र से घूरूँ
और ज्ञान की उन सभी सच्चाइयों पर
नए सिरे से यकीन करना शुरू करूँ
जैसे वे बिल्कुल सच्ची ही हों...

[1. चारा काटने वाली मशीन।]

मैं अब विदा लेता हूँ

मैं अब विदा लेता हूँ
मेरी दोस्त, मैं अब विदा लेता हूँ
मैंने एक कविता लिखनी चाही थी
सारी उम्र जिसे तुम पढ़ती रह सकतीं

उस कविता में
महकते हुए धनिए का ज़िक्र होना था
ईख की सरसराहट का ज़िक्र होना था
उस कविता में वृक्षों से चूती ओस
और बाल्टी में चोए दूध पर गाती झाग का ज़िक्र होना था
और जो भी कुछ

मैंने तुम्हारे जिस्म में देखा
उस सबकुछ का ज़िक्र होना था

उस कविता में मेरे हाथों की सख़्ती को मुस्कुराना था
मेरी जाँघों की मछलियों ने तैरना था
और मेरी छाती के बालों की नरम शाल में से
स्निग्धता की लपटें उठनी थीं
उस कविता में
तेरे लिए
मेरे लिए
और ज़िंदगी के सभी रिश्तों के लिए बहुत कुछ होना था मेरी दोस्त

लेकिन बहुत ही बेस्वाद है
दुनिया के इस उलझे हुए नक्शे से निपटना
और यदि मैं लिख भी लेता
शगनों से भरी वह कविता
तो उसे वैसे ही दम तोड़ देना था
तुम्हें और मुझे छाती पर बिलखते छोड़कर
मेरी दोस्त, कविता बहुत ही निसत्त्व हो गई है
जबकि हथियारों के नाखून बुरी तरह बढ़ आए हैं
और अब हर तरह की कविता से पहले
हथियारों से युद्ध करना जरूरी हो गया है

युद्ध में
हर चीज़ को बहुत आसानी से समझ लिया जाता है
अपना या दुश्मन का नाम लिखने की तरह
और इस स्थिति में
मेरे चुंबन के लिए बढ़े होंठों की गोलाई को
धरती के आकार की उपमा देना
या तेरी कमर के लहरने की
समुद्र के साँस लेने से तुलना करना
बड़ा मजाक-सा लगना था
सो मैंने ऐसा कुछ नहीं किया
तुम्हें

मेरे आँगन में मेरा बच्चा खिला सकने की तुम्हारी ख़ाहिश को
और युद्ध के समूचेपन को
एक ही कतार में खड़ा करना मेरे लिए संभव नहीं हुआ
और अब मैं विदा लेता हूँ

मेरी दोस्त, हम याद रखेंगे
कि दिन में लोहार की भट्ठी की तरह तपनेवाले
अपने गाँव के टीले
रात को फूलों की तरह महक उठते हैं
और चाँदनी में पगे हुए 'टोक'[1] के ढेरों पर लेटकर
स्वर्ग को गाली देना, बहुत संगीतमय होता है
हाँ, यह हमें याद रखना होगा क्योंकि
जब दिल की जेबों में कुछ नहीं होता
याद करना बहुत ही अच्छा लगता है

मैं इस विदाई के पल शुक्रिया करना चाहता हूँ
उन सभी हसीन चीज़ों का
जो हमारे मिलन पर तंबू की तरह तनती रहीं
और उन आम जगहों का
जो हमारे मिलने से हसीन हो गईं
मैं शुक्रिया करता हूँ
अपने सिर पर ठहर जानेवाली
तेरी तरह हल्की और गीतों भरी हवा का
जो मेरा दिल लगाए रखती थी तेरे इंतज़ार में
रास्ते पर उगे हुए रेशमी घास का
जो तुम्हारी लरजती चाल के सामने हमेशा बिछ जाता था
टीण्डों से उतरी कपास का
जिसने कभी भी कोई उज्र न किया
और हमेशा मुस्कुराकर हमारे लिए सेज बन गई
गन्नों पर तैनात पिद्दियों का
जिन्होंने आने-जानेवालों की भनक रखी
जवान हुए गेहूँ की बल्लियों का
जो हमें बैठे हुए न सही, लेटे हुए तो ढँकती रहीं
मैं शुक्रगुज़ार हूँ, सरसों के नन्हें फूलों का

जिन्होंने कई बार मुझे अवसर दिया
तेरे केशों से पराग केसर झाड़ने का
मैं आदमी हूँ, बहुत कुछ छोटा-छोटा जोड़कर बना हूँ
और उन सभी चीज़ों के लिए
जिन्होंने मुझे बिखर जाने से बचाए रखा
मेरे पास बहुत शुक्राना है
मैं शुक्रिया करना चाहता हूँ

प्यार करना बहुत ही सहज है
जैसे कि जुल्म को झेलते हुए
ख़ुद को लड़ाई के लिए तैयार करना
या जैसे गुप्तवास में लगी गोली से
किसी गुफा में पड़े रहकर
जख़्म के भरने के दिन की कोई कल्पना करे

प्यार करना
और लड़ सकना
जीने पर ईमान ले आना मेरी दोस्त, यही होता है
धूप की तरह धरती पर खिल जाना
और फिर आलिंगन में सिमट जाना
बारूद की तरह भड़क उठना
और चारों दिशाओं में गूँज जाना—
जीने का यही सलीक़ा होता है
प्यार करना और जीना उन्हें कभी न आएगा
जिन्हें ज़िंदगी ने बनिए बना दिया

जिस्म का रिश्ता समझ सकना—
खुशी और नफ़रत में कभी भी लकीर न खींचना—
ज़िंदगी के फैले हुए आकार पर फिदा होना—
सहम को चीरकर मिलना और विदा होना—
बड़ा शूरवीरता का काम होता है मेरी दोस्त,
मैं अब विदा लेता हूँ

तुम भूल जाना
मैंने तुम्हें किस तरह पलकों के भीतर पालकर जवान किया

कि मेरी नज़रों ने क्या कुछ नहीं किया
तेरे नक्शों की धार बाँधने में
कि मेरे चुंबनों ने कितना खूबसूरत बना दिया तुम्हारा चेहरा
कि मेरे आलिंगनों ने
तुम्हारा मोम-जैसा शरीर कैसे साँचे में ढाला

तुम यह सभी कुछ भूल जाना मेरी दोस्त,
सिवाय इसके
कि मुझे जीने की बहुत लोचा [1] थी
कि मैं गले तक ज़िंदगी में डूबना चाहता था
मेरे भी हिस्से का जी लेना, मेरी दोस्त,
मेरे भी हिस्से का जी लेना!

[1. लालसा।]

प्रतिबद्धता

हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
जिस तरह हमारी मांसपेशियों में मछलियाँ हैं
जिस तरह बैलों की पीठों पर उभरे
चाबुकों के निशान हैं
जिस तरह क़र्ज के कागज़ों में
हमारा सहमा और सिकुड़ा हुआ भविष्य है
हम ज़िंदगी, बराबरी या कुछ भी और
इसी तरह सचमुच का चाहते हैं

जिस तरह सूरज, हवा और बादल
घरों और खेतों में हमारे अंग-संग रहते हैं
हम उसी तरह
हुकूमतों, विश्वासों और खुशियों को

अपने साथ-साथ देखना चाहते हैं
ताकतवरो, हम सब कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं
हम उस तरह का कुछ भी नहीं चाहते
जैसे शराब के मुकदमे में
किसी टाऊट की गवाही होती है
जैसे पटवारी का 'ईमान' होता है
या जैसे किसी आढ़ती की कसम होती है—

हम चाहते हैं अपनी हथेली पर कोई इस तरह का सच
जैसे गुड़ की पत्त में 'कण' होता है
जैसे हुक्के में 'निकोटिन' होती है
जैसे मिलन के समय महबूब के होंठों पर
मलाई-जैसी कोई चीज़ होती है

हम नहीं चाहते
पुलिस की लाठियों पर टँगी किताबों को पढ़ना
हम नहीं चाहते
फौजी बूटों की टाप पर हुनर का गीत गाना
हम तो वृक्षों पर खनकते संगीत को
अरमान-भरे पोरों से छूकर देखना चाहते हैं
आँसू गैस के धुएँ में नमक चाटना
या अपनी ही जीभ पर अपने ही लहू का स्वाद चखना
किसी के लिए भी मनोरंजन नहीं हो सकता
लेकिन
हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
और हम सब कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं—
ज़िंदगी, समाजवाद, या कुछ भी और...

कल

कल हमारे गाँव में कुछ भी नहीं हुआ

परसों शायद नाजायज़ गर्भ था
कि गाँव के घूरे पर फेंक कर चली गई
किरनों की कें-कें
यों ही घरवालों से झिड़कियाँ खानी थीं
कि उसे तरस खाकर बठली में डाल लाईं
गोबर समेटती लड़कियाँ
वैसे कल का किसी को इंतज़ार न था...

दूधवाले के साइकिल की चेन
बहुत ही पुरानी थी कि जख़्मी हो गए
बूरी भैंसों के रेशम जैसे थन
या गड़ गई हलवाहे के नंगे पैर में
घिसकर उतरी बैल की खुरी
या मर गया ट्रक ने नीचे आकर
नाश्ते के पीछे जा रहा कुत्ता
बच्चे गोलियाँ खेलते रहे
छत पर खड़ी सरपंच की बेटी
बहुत देर केश सँवारती रही
कल हमारे गाँव में कुछ नहीं हुआ
कल भी हमारे मुँह थे— चेहरे नहीं थे
कल भी हम समझते रहे कि दिल ही सोचता है
रब्ब कल भी अंबर की नीलाई में क़ैद ही रहा
निराश चरवाहे के बाड़े में
उसकी कल भी गैरहाज़िरी लगी
कल भी रहा हमें यक़ीं
कि मथुरा का राजा सचमुच
सुदामा का मित्र ही होगा, नहीं तो
पैर धोकर क्यों पीता—
कल भी हमें कृष्ण की आशा-सी रही
कल हमारे गाँव में कुछ भी नहीं हुआ
कल का किसे इंतज़ार था
कल से ज़्यादा हमें अच्छे से तंबाकू की चाह थी
क्या था 'गर न भी बजता दो बार मंदिर का घंटा?

आज का दिन

लगता है यह सवेर नहीं है
मौत की हथेली पर जमी हुई मुस्कुराहट है
रात की रो-रोकर सूजी हुई आँख है
सूर्य-जैसा कुछ कहीं नहीं है

कबूतरों के गुटकने से कुछ भी शुरू नहीं हुआ
शायद आज का दिन बचने नशेड़ी की आह से शुरू हुआ है
बिल्ली गिरा गई जिसका
भिगोए पोस्त का छन्ना
आज का दिन शायद करमू की सूखती जा रही धरती पर उगा है
जिसके खुरली पर बँधे बैल को
रात में सरकारी साँड मार गया था
आज का दिन फटे हुए दूध की चाय-जैसा
विधवा रतनी के गले से मुश्किल से उतरता है
आज का दिन शैदाई हरिकिशन की
गालियों के किनारे लड़खड़ाता चल रहा है
आज का दिन अमरो भंगिन के गले में पहने हुए उतार की तरह
नंगेज की खामोशी तैर रहा है
लगता है आज का दिन किसी मुर्दे का लहू है
या रद्द की गई वोट की पर्ची है
या कि गाँव की अल्हड़ लड़की के बहुत कम देख सकनेवाले
नयनों की बहुत गहरी दृष्टि है
या उदास बूढ़े के
सींक खाए दरवाज़े की चौखट पर लगी हुई टिकटिकी है
या किसी बाँझ औरत का
चौरस्ते में किया हुआ टोना है

आज का दिन किसी ज़ालिम मंत्री का

अनचाहा दफ्तरी मातम है
या किसी दुर्गंध छोड़ते थैले के भीतर
बुझाकर रखा बीड़ी का टुकड़ा है
या शायद
सातवीं में फेल हुई बच्ची की
चुनरी में रखा सूखी आँखों का नीर है
आज का दिन धार्मिक मान्यता का दिन नहीं है

आज का दिन धार्मिक मान्यता का दिन नहीं है
किसी बच्चे की बड़बड़ाती नींद है
आज का दिन तो संभाल-संभालकर पाला हुआ आतंक का वृक्ष है
राजनीतिक हिंसा की शृंगारी हुई घोड़ी है
आज का दिन किसी दुश्मन द्वारा
खेतों में दी गई चुनौती है

आज का दिन किसी ग्रंथी के शंख बजाने से ख़त्म नहीं होगा
आज का दिन शायद बहुत लंबा चला जाए
और पंछी संध्या की उड़ान की प्रतीक्षा में थक जाएँ
आज का दिन शायद बहुत लंबा चला जाए...

छन्नी

छन्नी वे लोकड़ियो— छन्नी
रब्ब देवे वे वीरा तैनूँ बन्नी
—पंजाबी का एक प्रसिद्ध लोकगीत
(छन्नी ओ लोगो— छन्नी
ओ भाई, रब्ब तुम्हें दुल्हन दे)

छन्नी तो छन्नी हुई
लेकिन गुड्डिए, तेरे गीतों से

तेरे वीर को दुल्हन न मिलेगी
उसे तो मार जाएगी
बाबुल की कम ज़मीन की परछाईं
उसकी पास की हुई मैट्रिक को
मरियल-से भैंसे चर जाएँगे
और उसके चकलेदार सीने पर
हमेशा ही बिगड़े हुए इंजन की तकावी
चपातियाँ बेलती रहेगी

धीरे-धीरे हो जाएगी धीमी
उसकी जाँघों की कपोतों की उड़ान
ख़त्म हो जाएगा चोग चावों के भंडार से—
वह बड़ा छटपटाएगा
जिस दिन पहली बार अफीम की चींटी
उसकी अंतड़ियों पर चलेगी
चौपाल से अपने अमली बनने
की कनसो को वह सूँघ-सूँघकर गुज़रेगा

फिर धीरे-धीरे बदल जाएँगी चौपाल की बातें
और फिरनी से ही लौटने लगेंगे
उसे देखनेवाले
गुड्डिए, दूर क्षितिज की ओर
जहाँ मगरमच्छों के जबाड़े मिलते हैं
नाक की सीध में चलता जाएगा तेरा वीर
तू जिसे दिन समझती है
शिकारियों की मुट्ठी में पकड़े हुए
धागे का सिरा है
और रात कुछ नहीं
डोरी में दी हुई मक्कार ढील के सिवाय
गुड्डिए, अपने तो सिर्फ़ गीत हैं
समय अपना नहीं है

'गर समय अपना होता
तो तुझे खाली कलाइयाँ

ढँक-ढँककर रखने का फिकर न होता
अभी तो समय कोई लहू माँगती सूई है
जो पुर तो सकती है
तेरे फूलों का भ्रम बुन रहे पोटे के फूल में
लेकिन सिल नहीं सकती
तेरी कमर से घिसती जा रही कुर्ती को

छन्नी तो छन्नी हुई
लेकिन गुड्डिए, हो सके तो
वीर की शंकाओं को
गीतों के मोह की बाड़ से न घेरना
उसे खोज लेने देना
गले में पड़े हुए रस्से की गाँठ
उसके माथे पर झुक आई सदियों की कूबड़
कर लेने देना सम्मोंवाली लाठी को सीधा
उसे डाल लेने देना
मजदूरी के पिडों[1] में निकली साँपों की बांबियों में हाथ

सिलसिला शायद तेरे कुएँ पर उतरी
पुलिस की धाड़ से चले
या चलते पुर्ज़े पंच के
तिरंगे की तरह लहराते कुल्ले से
या भूकंपों की तरह दीवारों को कँपकँपाती हुई
इलैक्शन की मोटर से...

सिलसिला कहीं से भी चल सकता है गुड्डिए—
अपने गीतों को जा भिड़ने देना
गंदी साँसें छोड़ती गालियों के सीने से

फिर एक बार
चौपालों में उसका ज़िक्र छिड़ेगा
जो अँधेरे में उसके कदमों के आगे
रोशनी की लकीर बनकर चलेगा...
छन्नी तो छन्नी हुई

गडिुए, हो सके तो वीर की शंकाओं को
बस, गीतों के मोह की बाड़ से न घेरना।

[1. टीलों।]

चिड़ियों का चंबा [1]

चिड़ियों का चंबा उड़कर कहीं न जाएगा
ऐसे ही कहीं इधर-उधर बाँधों से घास खोदेगा
रूखी मिस्सी रोटियाँ ढोएगा
और मैली चुनरियाँ भिगोकर
लूओं से झुलसे चेहरों पर फिराएगा

चिड़ियों का चंबा उड़कर कहीं नहीं जाएगा
यों ही कहीं इधर-उधर छिपकर
अकेला-अकेला रोया करेगा
शापित यौवन के मरसिए गाया करेगा

चिड़ियों के चंबे को ज़रा भी ख़बर न होगी
अचानक कहीं लोहे की चोंचों का जाल
उसके जितने आसमान पर बिछ जाएगा
और लंबी उड़ान का उसका सपना
उसके मृगनयनों से भयभीत हो जाएगा

चिड़ियों का चंबा मुफ़्त ही परेशान होता है
बाबल तो डोली भेजकर
उखड़े दरवाज़े को ईंटें लगवाएगा
और गुडियाएँ फाड़कर
पसीने से गले हुए कुर्ते पर पैबंद लगवाएगा
जब वह ख़ुद ही गलोटों की तरह कात लिया जाएगा

चिड़ियों के चंबे को मोह चर्खे का ज़रा न सताएगा

चिड़ियों का चंबा उड़कर
किसी भी देश न जाएगा
सारी उम्र काँटे चारे के झेलेगा
और सफेद चादर पर लगा
उसका माहवारी का रक्त उसका मुँह चिढ़ाएगा।

[1. पंजाबी लोकगीत— 'साडा चिड़ियाँ दा चंबा नी, बाबल असाँ उड्ड जाना' ('चिड़ियों का चंबा' नौजवान लड़कियों के लिए प्रयुक्त)।]

सफ़ेद झंडों के नीचे

मैंने सुबहों को आसमानों से संभाल-संभाल,
सहज-सहज धरती पर रखा

मुझे क्या पता था मेरे ऐसे उतारे हुए दिन
किसी के लिए हफ़्ते, महीने और साल बन जाएँगे
और ऐसे संसार में क़त्लों का
एक घिनौना सिलसिला साँस लेने लगेगा

लोग जागेंगे— और उन्हें घुग्गुओं के सामने
मातहतों की तरह सलामी देनी होगी
रोज़नामचे खुलेंगे— और आँखें बंद कर
गर्म और गाढ़े रक्त के बारे में सोचा जाएगा
माशूका ख़त लिखेगी
चौकों की बुझी आग पर
जिसे ज़रा भी उत्तेजित हुए बग़ैर
आधी छुट्टी उगल-निगलकर पढ़ेगी
सारा दिन बच्चे एक दशक के फ़र्क़ से

छर्रे छोड़ेंगे, फ़तह समझकर क़त्लगाह को

और आखिर बात-बात पर दिल भर लेने वाले बादल
बिना भभूके से जल उठेंगे
सबके सिरों पर से एक जलता हुआ जहाज गुज़रेगा
और एक ठंडे युद्ध में झोंके बिना वर्दी सिपाही
खंदकों को लौटते हुए सोचेंगे
कि शायद कभी झंडों से निकलकर
उड़ान भरेंगे सफ़ेद कपोत भी...
और मैं जले हुए जहाज के धुएँ से खाँसता सोचूँगा
सुबहों को धरती पर धड़ाम से गिरने दूँ
हो सके तो बस नुकीले शब्दों से
शिकारी झंडों को कुरेदने की कोशिश करूँ
जिनमें जकड़े गए हैं
मेरी लाडो की छातियों से कबूतर।

तुम्हें पता नहीं

तुम्हें पता नहीं, मैं शायरी में क्या समझा जाता हूँ
जैसे किसी उत्तेजित मुजरे में
कोई आवारा कुत्ता आ घुसे
तुम्हारी समझ में मैं किसी ख़तरनाक पार्टी के लिए
आधी रात तक लहू जलाए
न जाने क्या लिखता रहता हूँ
तुम्हें पता नहीं मैं कविता के पास कैसे जाता हूँ—
कोई गाँव की सुंदरी घिस चुके फैशन का नया सूट पहने
बौराई-सी जैसे शहर की दुकानों पर चढ़ती है...

मैं कविता से माँगता हूँ
तुम्हारे लिए नेल पालिश की शीशी

छोटी बहन के लिए रंगदार कढ़ाई वाला धागा
और बापू के मोतियाबिंद के लिए दवाई

कविता इस तरह की माँगों को शरारत समझती है
और महीने दर महीने अपने रखवालों को
बेंत के डंडे
और नरम बटों वाली बंदूकें देकर भेजती है
रात-बिरात मेरी ओर
जो अपने साथ ले जाते हैं
मेरी मनपसंद किताबें
आले में रखी छोटी उम्र की फोटो
और घर की सीढ़ियों से गिरकर जख़्मी हुई
मेरी पहली मुहब्बत की उदास रंगों में बिखर गई चीख़

तुम्हें पता नहीं कि सिपाही मुझे जानते हुए भी
कैसे अजनबी बन जाते हैं
तलाशी ले रहा कोई जाहिल-सा पंजा
कैसे जा झपटता है
मेरे चाँदनी रातों के किए अहदनामे पर
तुम्हें पता नहीं मेरी रीढ़ की हड्डी का पुराना जख़्म
उनके जाने के बाद कैसे टसकने लगता है

तुम्हें पता नहीं वह ख़तरनाक पार्टी क्या करती है
वहाँ स्याह काली रातों में
मुहब्बत का एक उनींदा दस्तावेज
सोई पड़ी धरती पर फड़फड़ाता है
लगातार कुरेदती हुई हवा के सामने
नंगे सीने खड़े होने का एक सिलसिला है—

वे हथियारों-जैसे आदमी हैं
और आदमियों-जैसे हथियार
असल में न वे आदमी हैं न हथियार
वे हथियारों से आदमी के
टूट रहे याराने की कड़कड़ हैं

असल में वहाँ लोग हैं
दूर कुएँ को जाते रास्ते की रेत-जैसे
जिस पर कई सदियाँ गृहिणियाँ भत्ता[1] उठाए चलती रहीं
सोचती हुई कि शायद कहीं कभी
यहाँ सड़क बन जाए
लेकिन सड़क पर चलने वाले ट्रैक्टर-चालक को
न गृहिणियों का पता होगा
न तारकोल के नीचे बिछी हुई रेत का—
उन्हें साइकिल चाहिए
और रोटी की जगह खाने के लिए कोई भी चीज़

तुम्हें पता नहीं मैं पिटे हुए गीदड़ की तरह
क्यों भाग आया हूँ— विलायती अखबार के संपादक के पास से
जिसके रट्टनों के बगैर हाथ बहुत कोमल थे—
भैंस द्वारा चाटकर साफ की गई नथनी की तरह
लेकिन उसकी कतरी हुई दाढ़ी
जैसे कोई तपती हुई सलाख थी
जो आज़ादी की पहली सुबह की तरह
मेरी आँखों में घुस जाने लगी
उसके बैग में तह किए हुए बादलों के थान थे
और कैमरे में लालों का एक बासी हुआ पोखर
मैंने उसकी फिएट की डिग्गी में
अपने बचपन में हारे हुए आदमियों की डिब्बी देखख़ुदी
लेकिन उसकी ओर जितनी बार हाथ बढ़ाया
कभी सेहत मंत्री खाँस पड़ा
कभी हरियाणा का आई.जी. हुंकारा
तुम्हें पता नहीं कितना असंभव था—
उसकी गैर-राजनीतिक राजनीति के
अजगर-जैसे फुत्कारते शब्द-बाणों[2] से बचाकर
ख़ुद को
तुम्हारे लिए साबुत ले आना...

वह संपादक और वैसे ही हज़ारों लोग
अपनी भद्दी देह पर सवार होकर आते हैं

और गाँव की पगडंडियों पर
घास से हरी चमक मर जाती है
ये लोग असल में रोशनी के भुनगों-जैसे हैं
जो दीया जलाकर पढ़ रहे बच्चों की नासिकाओं में
मितलाहट का भभूका बनकर चढ़ते हैं
मेरे शब्द उस दीये में
तेल की जगह जलना चाहते हैं
मुझे कविता का इससे अच्छा उपयोग नहीं पता
और तुम्हें पता नहीं
मैं शायरी में क्या समझा जाता हूँ !

[1. कलेवा 2. लफ्फाजी।]

युद्ध और शांति

हम जिन्होंने युद्ध नहीं किया
तुम्हारे शरीफ बेटे नहीं हैं ज़िंदगी !
वैसे हम हमेशा शरीफ बनना चाहते रहे
हमने दो रोटियों और ज़रा-सी रजाई के एवज में
युद्ध के आकार को सिकोड़ना चाहा
हम बिना शान के फंदों में शांति-सा कुछ बुनते रहे
हम बर्छी की तरह हड्डियों में चुभे सालों को उम्र कहते रहे
जब हर पल किसी अकड़ाए शरीक की तरह सिर पर गरजता रहा
हम संदूक में छिप-छिपकर युद्ध को टालते रहे

युद्ध से बचने की लालसा में हम बहुत छोटे हो गए
कभी तो थके हुए बाप को अन्नखाऊ बुड्ढे का नाम दिया
कभी चिंताग्रस्त बीवी को चुड़ैल का साया कहा
सदैव क्षितिज में नीलामी के दृश्य तैरते रहे
और हम नाज़ुक-सी बेटियों की आँख में आँख डालने से डरते रहे

युद्ध हमारे सिरों पर आकाश की तरह छाया रहा
हम धरती पर खोदे गढ़ों को मोर्चों में बदलने से झिझकते रहे

डर कभी हमारे हाथों पर बेगार बन उग आया
डर कभी हमारे सिरों पर पगड़ी बन सज गया
डर कभी हमारे मनों में सौंदर्य बनकर महका
डर कभी आत्मा में सज्जनता बन गया
कभी होंठों पर चुगली बनकर बुड़बुड़ाया
ऐ ज़िंदगी, हम जिन्होंने युद्ध नहीं किया
तुम्हारे बहुत पाखंडी बेटे हैं

युद्ध से बचने की लालसा ने
हमें लिताड़ दिया है घोड़ों के सुमों के नीचे
हम जिस शांति के लिए रींगते रहे
वह शांति बाघों के जबड़ों में
स्वाद बनकर टपकती रही
शांति कहीं नहीं होती—
आत्मा में छिपे गीदड़ों का हौंकना ही सब कुछ है

शांति—
घुटनों में गर्दन देकर ज़िंदगी को सपने में देखने की कोशिश है
शांति वैसे कुछ नहीं है
भूमिगत साथी से आँख बचा लेने के लिए
सड़क किनारे नाले में झुक जाना ही सब कुछ है
शांति कहीं नहीं होती
नारों की गरज से घबराकर
अपनी चीख़ में संगीत के अंश ढूँढ़ना ही सब कुछ है
और शांति कहीं नहीं होती

तेल बगैर जलती फसलें,
बैंक की फाइलों के जाल में कड़कड़ाते गाँव
और शांति के लिए फैली बाँहें
हमारे युग का सबसे कमीना चुटकला है

शांति बाँह में चुभी चूड़ी के आँसू जितना ज़ख़्म है
शांति बंद फाटक के पीछे
मरती हुई हवेलियों की हँसी है

शांति चौपालों में अपमानित दाढ़ियों की आह है
शांति और कुछ नहीं है

शांति दुखों और सुखों में बनी सीमा के सिपाही की राइफल है
शांति जुगाली करते विद्वानों के मुँह से गिर रही लार है
शांति पुरस्कार लेते कवियों की बढ़ी हुई बाजुओं का 'टुण्ड' है
शांति मंत्रियों के पहने हुए खद्दर की चमक है
शांति और कुछ नहीं है
या शांति गाँधी का जाँघिया है
जिसकी तनियों को चालीस करोड़ आदमियों को
फाँसी लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है
शांति माँगने का अर्थ
युद्ध को ज़िल्लत के स्तर पर लड़ना है
शांति कहीं नहीं होती

युद्ध के बगैर हम बहुत अकेले हैं
अपने ही आगे दौड़ते हुए हाँफ रहे हैं
युद्ध के बगैर बहुत सीमित हैं हम
बस हाथ-भर में ख़त्म हो जाते हैं
युद्ध के बगैर हम दोस्त नहीं हैं
झूठी-झुठलाई भावनाओं की कमाई खाते हैं

युद्ध इश्क के शिखर का नाम है
युद्ध लहू से मोह का नाम है
युद्ध जीने की गर्मी का नाम है
युद्ध कोमल हसरतों के मालिक होने का नाम है
युद्ध शांति की शुरुआत का नाम है
युद्ध में रोटी के हुस्न को
निहारने-जैसी सूक्ष्मता है
युद्ध में शराब को सूँघने-जैसा एहसास है

युद्ध यारी के लिए बढ़ा हुआ हाथ है
युद्ध किसी महबूब के लिए आँखों में लिखा ख़त है
युद्ध गोद में उठाये बच्चे की
माँ के दूध पर टिकी मासूम उँगलियाँ हैं
युद्ध किसी लड़की की पहली
'हाँ' जैसी 'ना' है
युद्ध ख़ुद को मोह-भरा संबोधन है

युद्ध हमारे बच्चों के लिए
धारियों वाली गेंद बनकर आएगा
युद्ध हमारी बहनों के लिए
कढ़ाई के सुंदर नमूने लाएगा
युद्ध हमारी बीवियों के स्तनों में
दूध बनकर उतरेगा
युद्ध बूढ़ी माँ के लिए नज़र की ऐनक बनेगा
युद्ध हमारे बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर
फूल बनकर खिलेगा

वक़्त बहुत देर
किसी बेकाबू घोड़े की तरह रहा है
जो हमें घसीटता हुआ ज़िंदगी से बहुत दूर ले गया है
और कुछ नहीं, बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा
बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा।

इमरजेंसी लगने के बाद

इस रहस्यपूर्ण मृत्यु में सिवाय इसके
कि कोई मर गया है, कुछ भी सच नहीं
बाकी सब अफवाहें हैं
कान-रस है

या उतरते शीत का सन्नाटा

अब मातम होगा या भीतर-ही-भीतर घी के चिराग जलेंगे
और एक उदासी— चुनी हुई कपास के खेत-जैसी
जो मरने वाले के जीते हुए भी थी
यहाँ हमारे दरवाज़ों के कब्जों के साथ
जो खुलते बंद होते लगातार चीख़ती

इस रहस्यपूर्ण मृत्यु में कुछ भी सच नहीं सिवाय इसके
कि क़ब्रें तैयार नहीं अपना स्वभाव बदलने के लिए
और आदमी पींग की लौटती हिलोर के आखिरी हिस्से की तरह
उत्तेजना से इकट्ठा हो रहता है
खुशी व डर को अपनी जाँघों में दबाए हुए
निर्विघ्न समाप्त होने की अरदास
हमारे कानों के भीतर सिक्का भरती रहती है

और यह डर कि हार जाएगा गुरुवार आखिर
शुक्रवार के पहले नगारे से
कुछ को क़ातिल बनने का बोध देता है

तो भी इस क़त्ल में दोषी सिर्फ़ बंदूकधारी नहीं
हम भी हैं जिनकी आँखों का सुरमा
हमारे आँसुओं के लिए कर्फ़्यू बन गया
कुछ भी हो, एक उसके मरने के सिवाय
और बाकी सब अफवाहें हैं, कान-रस है।

आशिक की अहिंसा

पहला मुंडा मित्राँ दा

लावाँ वाले दा उज्र न कोई [1]

बात पहले लड़के की ही नहीं
पहले चुंबन की भी है
या सिर्फ़ एक बार निगाह भर कर देख सकने की भी—
उज्र जब भी कभी हुआ
तो मित्रों से ही हुआ है
लावाँ वाले के पास तो सिर्फ़ डंडा होता है
या समेत जूतों के लात

बात तो सिजदों की सड़क पर चलने की है
वैसे मित्रों को कौन-सा लावों पर बैठना नहीं आता
भैंसों को वह नहीं तो कोई और चरा लेगा
और वह चूरी नहीं तो प्याज के साथ अचार ले आएगी
बात तो चौधरियों के शमले पर, परिंदों की तरह चहकने की है
वैसे मित्रों को कौन-सा बाँसुरी के बगैर हाजत नहीं होती

ऐसे ही चद्धड़ों की फौज फिरती है
कहे बल्लमों से इश्क को कुचल देना है
कहे बेलों को टापों की मुहारनी पढ़ानी
बात तो बियाबान को सपनों का वर देने की है
या सदियों से उदास खड़े जंडों[2] की
धड़कन की चाट लगाने की
वैसे मित्रों को कौन-सा तरकश उतारना नहीं आता
बक्की [3] को कौन-सा हवा पर हँसना नहीं आता
बात कोई भी हो
लावाँ वालों के जब भी समझ में आई
मित्रों को तोहमतों के कंकड़ चबाने पड़े

वैसे आप कल नहीं— परसों आना
और जब भी किस्सों को पार करके
आपका आना हो—
मित्रों के पास अपना ही लहू होगा

और बहने के लिए नदियों के नए-नए मुहान
लावाँ वालों के पास कभी कुछ न होगा
सिवाय डंडे और जूतों समेत लातों के।

[1. एक लोकगीत की पंक्तियाँ— पहला पुत्र मित्र का होगा और पति को कोई एतराज़ न होगा 2. वृक्ष का नाम 3. लोकनायक मिर्ज़ा की घोड़ी।]

जोगासिंह [1] की आत्मालोचना

मैं यारो युद्ध में कहाँ छिपाऊँगा
अपने युद्ध से पहले के जख़्म
तीन इकलौती लावें न तो मेरी ढाल बन पाएँगी
और न मरहम की डिब्बी

जब मैं चला था, पाँच ककार [2] घोड़े पर मेरे साथ बैठे—
घोड़े की लगाम को मैं अपने हाथों में महसूस करता रहा
इससे बेख़बर कि मेरी अपनी लगाम
जंगली रास्ते के पंजों में थी
जो कभी मुझे वेश्या के बंगले पर ले गए
और कभी जादू की झीलों पर
जहाँ पंछियों के गीत
निरंतर सीख रहे थे चैन से मरना

मैंने कभी सोचा नहीं था कि रास्तों की
अपनी भी कोई मर्जी होती है
और तीन लावों का, छोटा-सा ही सही
अपना भी कोई इतिहास होता है....
रब्ब जी, कब निकलेगा मेरे जिस्म से
तीन लावों का बुखार

जो मेरा छठा ककार बनकर रह गया है
गुरु से विमुख होता तो कोई बात न थी
अब तो जोगासिंह रकाब के बीच के पैर का ही नाम है—
और भँगानी तक पहुँचते, यह सिर्फ़ हाथ ही रह जाएगा
मैं कभी हाथ, कभी पैर होता हूँ, जोगासिंह कभी नहीं होता

और चौथी लाँव
कभी लगता है चौथी लाँव
बस किसी कल्पित दुनिया का
एक चमकता कोना है, जिसका, और कोना कोई नहीं होता

मैं यारो युद्ध में यदि हार भी गया
तो वह छहों ककारों की ही कोई तकदीर होगी
जोगासिंह तो न कभी हारता है, न जीतता है
जोगासिंह तो तैयार-बर-तैयार, हुक्म का बँधा है
जोगासिंह तो न कभी हारता है, न जीतता है।

[1. गुरुगोविन्द सिंह का एक सिंह, जो शादी बीच में छोड़ युद्ध में चला आया 2. सिखों के पाँच ककार— केश, कड़ा, कृपाण, कच्छा व कंघी।]

तीसरा महायुद्ध

कचहरियों के बाहर खड़े
बूढ़े किसान की आँखों में मोतियाबिंद उतर आएगा
शाम तक हो जाएगी सफ़ेद
रोज़गार दफ्तर के आँगन में थक रही ताजी उगी दाढ़ी
बहुत जल्द भूल जाएगा पुराने ढाबे का नया नौकर
अपनी माँ के हमेशा ही धुत्त मैले रहने वाले

पोने की मीठी महक
ढूँढ़ता रहेगा किनारे सड़क के वह निराश ज्योतिषी
अपने ही हाथ से मिटी हुई भाग्य-रेखा
कार तले कुचले गए और पेंशन लेने आए
पुराने फौजी की टूटी हुई साइकिल
तीसरा महायुद्ध लड़ने को सोचेगी

तीसरा महायुद्ध
जो नहीं लड़ा जाएगा अब
जर्मनी और भाड़े के टट्टुओं के बीच
तीसरा महायुद्ध सीनों में खुर रही
जीने की बादशाहत लड़ेगी
तीसरा महायुद्ध गोबर से लिपी
छतों की सादगी लड़ेगी
तीसरा महायुद्ध कमीज़ से धुल न सकने वाले
बरोजे की छींटें लड़ेंगी
तीसरा महायुद्ध
पेशाब से भरी रूई में लिपटी कटी हुई उँगली लड़ेगी

जुल्म के चेहरे पर चमकती
बनी-सँवरी नज़ाकत के खिलाफ़
धरती को कैद करना चाहते चाबी के छल्ले के खिलाफ़
तीसरा महायुद्ध
कभी न खुलने वाली मुट्ठी के खिलाफ़ लड़ा जाएगा
कोमल शामों के बदन पर रेंगने वाले
सेह के काँटों के खिलाफ़ लड़ा जाएगा
तीसरा महायुद्ध उस दहशत के खिलाफ़ लड़ा जाएगा
जिसका अक्स दंदियाँ [1] निकालती मेरी बेटी की आँखों में है
तीसरा महायुद्ध
किसी फटी-सी जेब में मसल दिए गए
एक छोटे-से संसार के लिए लड़ा जाएगा।

[1. दूधिया दाँत।]

जंगल से गाँव के नाम संदेश

मेरे गाँव! कभी मुझे रात-बिरात मिलने आ
जब जेल के डोम पर बैठी-दहशत और ज़हालत की गिद्ध
अपने पैरों को समेट लेती है
सिर्फ़ दरबान जानते होंगे— उनका क्या है
तुम इस तरह आना!
जैसे जल रहे शमशान से बेख़बर गुज़र आता है परिंदा कोई
और छत्तीस चक्कियों के पास आकर पूछना
मेरा वह नज़रबंद कहाँ है, जिसकी नज़र
जैसे पोखर में तैरती नीम-सी दोपहर होती थी

लेकिन कहाँ—
इतनी फुरसत होगी तुम्हारे पास
तुम तो व्यस्त होगे हवा को दिशा देने में
ताकि तूड़ियों [1] के ख़त्म होने से पहले
मूँगफलियों की उड़ाई हो सके
और उन बच्चों के लिए रेत बिछा रहे होंगे
जिन्होंने कोमल उंगलियों से 'अ' डालना सीखना है
और उम्र भर 'अ' के बच्चों से
छुड़ा नहीं सकना संसार अपना

मेरे गाँव, तेरी वीरानियों में तो झर रही होंगी
बार-बार ओट को देखती और शर्मा जाती
लड़कियों की अँगड़ाइयाँ
जो अभी इस बार जवान हुईं

तुम तो चुग रहे होगे उस हँसी के कंकड़

जो उन जवानों के होंठों पर तिड़क गए
जिनकी इस तरह सगाइयाँ हैं टूट गईं
कि जैसे कशीदने के लिए तैयार हुई कच्ची शराब का
घड़ा टूट जाए—

तुम आखिर गाँव हो, कोई सौंदर्यवादी शायर तो नहीं हो
जो इस फ़िज़ूल-सी चिंता में घिरे रहो
कि जाने कितने होते हैं दो और दो
तुम्हें तो पता है कि दो और दो यदि चार नहीं बनते
तो छील-तराशकर बनाने ही होंगे

तुम वीरता की बड़क हो मेरे गाँव
यहाँ न ही आना चोर-सा बनकर
मैं ख़ुद ही किसी दिन लौट आऊँगा
मेरा तो जीना ही नहीं है
तुम्हारे कीचड़ में फिसले हुए कदमों के नक्श देखे बग़ैर
तुम्हारे जठेरों[2] की मढ़ी पर
दीपकों से मिलकर झिलमिलाए बग़ैर
मैं भला कैसे रहूँगा
साझे फर्श पर काँच तोड़े बग़ैर
जहाँ हारे हुए बूढ़ों ने बैठकर
पवित्र सच्चाइयों की बातें करनी हैं...

[1. भूसा 2. पुरखों।]

धूप में भी और छाया में भी

मेरे से ज़रा-सी दूरी पर मैं सो रहा हूँ
इसके बावजूद कि उनसे झगड़ा बहुत बढ़ गया है

जिनकी मुद्दतों से मेरे साथ कड़वाहट थी ....

यह ज़रा-सी दूरी ईख में ताक पर बैठी काली तीतर है
अँगड़ाइयाँ लेती उड़ान जिसके परों से, धीमे-धीमे मर रही है
यह ज़रा-सी दूरी शायद मेरी माँ की दिव्य दृष्टि है
जिससे करुणा का समुद्र धीमे-धीमे दुर्गंधित होने लगा है
यह ज़रा-सी दूरी, शायद वे बिना पढ़ी किताबें हैं
जिनमें ज्ञान के जगते वृक्ष, धीमे-धीमे अंधे हो रहे हैं

यह ज़रा-सी दूरी शायद किसी जल रहे कफ़न की जाग है
या रोही के वीराने में भटकते
धीमे-धीमे ठंडे पड़ रहे नग़मे का गिला है

यह ज़रा-सी दूरी अपने पास ही सोए हुए मेरे बदन को
दी गई लोरी है
यह ज़रा-सी दूरी कोई बहरी आँधी है
उन गीतों के बिना चुगे अस्तों पर बहती
जिन्हें मैं पहाड़ों और कायदों में अकेले छोड़ आया था
कई बार लगता है मुझसे ज़रा-सी दूरी पर सोया पड़ा
दुश्मन से मिला हुआ आदमी है
जो दंभी शांति के ठहरे हुए जल में
अपने सपनों को तैरना सिखा रहा है

मेरे से ज़रा-सी दूरी पर मैं सो रहा हूँ, इसके बावजूद
कि खौल उठी हैं वे झीलें
जिनमें मैंने परछाइयों की तरह ठहर जाना चाहा था
इस ज़रा-सी दूरी के बीच
मैं रोटी की तरह बासी हो रहा हूँ और क़ब्र की तरह पुराना
मैं भाषणों की दाद देनी सीख रहा हूँ
इसके बावजूद कि कबूतर रूठकर गुटकना छोड़ गए
और चिड़ियाँ मेरे घर की छत को छोड़कर
जंगलों में घोंसले बनाने लगी हैं...

कलाम मिर्ज़ा [1]

तुम्हारी आँख भी सुना है सुरमा नहीं झेलती
सुना केशों में तुम्हारे भी कंघी चिहुँकती है
और सुना मेरा क़त्ल भी इतिहास के अगले पृष्ठ पर लिखा है
लेकिन शायद अब
सब कुछ पहले-सा न रहे
हो सकता है कि तुम्हें निकालने से पहले
मुझे रोटी निकाल ले जाए
और या मैं जंड [2] की बजाय किसी कुर्सी के नीचे
जमा हुआ ही काट दिया जाऊँ—
हो सकता है कि पहले ही तरह अब कुछ भी न हो

मैंने सुना है मेरे क़त्ल की योजना
राजधानी में
मेरे जन्म से बहुत पहले ही बन चुकी थी
और पीलू शायर
आजकल विश्वविद्यालय में नौकरी पर लग गया है
शायद वह मेरे क़त्ल को
मामूली-सी घटना करार दे और शताब्दियों के लिए
किराये की नज़्में लिखता रहे
और पहले की तरह अब कुछ भी न हो
मेरे पास तीर अब कागज़ के हैं
जो पाँच साल में एक ही चलता है
और जिसके वह लगता है वह पानी नहीं
मेरा लहू माँगता है

मेरे बाप-दादा ने अपनी कमाई
शासकों के पेट में डाली थी
और तुम जानती हो

वे बाघ हैं— बक्की [3] नहीं
कि हमें दानाबाद पहुँचाने जाएँ
समय की बात होती है— इस बार तुम बेवफा न होतीं
और मैं भाइयों के होते हुए भी
उन्हीं के सामने मारा जाऊँगा
इसीलिए मैं कहता हूँ
कि शायद सब कुछ पहले-सा न हो
वैसे तो तुम्हारी आँख भी
सुना है सुरमा नहीं झेलती
और सुना है तुम्हारे भी केशों से कंघी चिहुँकती है।

[1. पंजाब का प्रसिद्ध लोकनायक 2. ख़ुदा का नाम 3. मिर्ज़ा की घोड़ी।]

बड़-बड़ दा शब्दनामा

उसे किसने कहा था कि मेरे में यूँ लड़खड़ाती रहे
तेरी गैरहाज़िरी को
जैसे अपनी ही उतारी जूती को ढूँढ़ता शराबी
प्यास के उगते मुहानों पर झूल जाए

उसे किसने कहा था, मेरी जाँबाज़ी को
कि रेतीले अँधेरे में फुंकारते हुए
तेरे कदमों पर हथेलियों के बर्तन रखे
कि किसी लगन वाले खोजी की तरह
निहत्थे ही सूरज का इंतज़ार करे

उसे किसने कहा था कि मेरी मासूमियत को
कि उजड़े घोंसले के पास बैठी रहे
उड़ गए पंछियों के लौट आने की आशा में
और टूटे अंडों को जोड़ने की कोशिशें करती हुई

मैं नहीं चाहता इश्क की दास्तान बताने के लालच में
हर ऐरे-गैरे बिंब के पास इंक़लाब करता जाऊँ
अपनी तड़प का
मैं फिर भी पूछता हूँ उसे किसने कहा था
मेरे बिस्तर में बाँबी बना ले— उनींदे के नाग की
शायद किसी ने भी किसी को कुछ नहीं कहा
केवल झड़े हुए पत्तों पर ही चढ़ रही सीलन की खुश्बू
मेरी ठंडी पड़ी नज़रों से मिज़ाज पूछती है
और मुझे लगता है, किसी ने किसी को कुछ कहा होगा

कुछ कहना किसी का वैसे भी फ़िजूल है, मेरी मुहब्बत!
घमंडी खरगोश की तरह सोई हुई परछाइयाँ
शाम को जब तेज़ी से दौड़ेंगी
तो वहाँ पहले ही आराम करता मिलेगा
अँधेरे का कछुआ
रात की सीढ़ियों में।

लड़े हुए वर्तमान के रू-ब-रू

मैं आजकल अखबारों से बहुत डरता हूँ
ज़रूर उनमें कहीं न कहीं
कुछ न होने की ख़बर छपी होगी
शायद आप जानते नहीं, या जानते भी हों
कि कितना भयानक है कहीं भी कुछ न होना
लगातार नज़रों का हाँफते जाना
और चीज़ों का चुपचाप लेटे रहना— किसी ठंडी औरत की तरह

मुझे तो आजकल चौपालों में होती गपशप भी ऐसे लगती है

जैसे किसी झूमना चाहते वृक्ष को
साँप गुंजलक मारकर सो रहा हो
मुझे डर है खाली कुर्सियों की तरह कम हुई दीखती
यह दुनिया हमारे बारे में क्या उलटा-पुलटा सोचती होगी
अफ़सोस है कि सदियाँ बीत गई हैं
रोटी, काम और शमशान अभी भी समझते होंगे
कि हम इनकी ख़ातिर ही हैं ....
मैं उलझन में हूँ कि कैसे समझाऊँ
लजीले सवेरों को
संगठित रातों और शरीफ शामों को
हम कोई इनसे सलामी लेने नहीं आए
और साथ को साथ-जैसा कुछ कहाँ है
जो आलिंगन के लिए खुली बाँहों से
बस हाथ-भर की दूरी पर तड़पता रहे—
आजकल हादसे भी मिलते हैं तो ऐसे

जैसे कोई हाँफता हुआ बूढ़ा
वेश्या की सीढ़ी चढ़ रहा हो
कहीं कुछ इस तरह का क्यों नहीं है
जैसे किसी पहली को कोई मिलता है

भला कहाँ तक जाएगा
सींगों वाली क़ब्र के आगे दौड़ता हुआ
महात्मा लोगों का वरदान दिया हुआ यह मुल्क
आखिर कब लौटेंगे, घटनाओं से गूँजते हुए घरों में
हम जीने के शौर से जलावतन हुए लोग
और बैठकर अलावों पर कब सुनेंगे, आग के मिज़ाज की बातें

किसी न किसी दिन जरूर अपने चुबंनों से
हम मौसम के गालों पर चटाख डालेंगे
और सारी की सारी धरती अजीबो-गरीब अखबार बनेगी
जिसमें बहुत कुछ होने की खबरें
छपा करेंगी किसी न किसी दिन।

शमशान-दर-शमशान

अब जो मेरे कंधों पर चाबुक लिए बैठा है
मुद्दत हुई, यह समय मेरे साथ किकलियाँ डालता
गेंदें खेलता और दूर पराये कुओं पर
चोरी-चोरी नींबू तोड़ने जाया करता था

अब तो शायद साफ़ ही मुकर जाए
लेकिन तब तो रोज़-रोज़ मेरे अंग-संग रह घरवालों से गालियाँ खाता
ढीठ बनकर मेरी कमर को गुदगुदाता
और मैं लगातार हो रही बारिश से मुक्त हुए सूर्य की तरह हँस पड़ता

एक दिन मेरे हाथ में पकड़ा रह गया रूप बसंत [1] का किस्सा
अचानक मेरी उम्र की लड़कियाँ
सीने पर चुनरी सँवारने लगीं
और मुझे पशुओं के गोबर से गंध-सी आनी हट गई

उस दिन रोहियों के शमशानों को हैरानी हुई
जब गाँव के बीच एक ज़रा-सी क़ब्र खोदी गई
मैं कई दिन अँधेरे सवेरे बचपन के मज़ार पर जाकर रोया
मुद्दत हुई— आँसुओं और मैंने जब एक-दूसरे से अलविदा कही
मुद्दत हुई— शमशानों को भुलाए— अपनी बेक़द्री पर हैरान हुए
मुद्दत हुई— मुझे सीखे हुए उलटे पैरों चलना

मैंने नक्शे में चंडीगढ़ और दिल्ली को ढूंढ़ा
मुझसे तो लेकिन तहसील तक न पहुँचा गया
मैं रास्ते में पड़ते हड्डियों के ढेर के कुत्तों से डरता लौट आया

लौटा तो, आने तक चौपाल के बीच की क़ब्र

अब नहीं थी, अकेली व उदास
न्याय, चाहना और पागलपन की मढ़ियों से
काफ़ी बदल चुकी थी

रोज़ थके किसान शाम को जलाया करते थे
लट-लट जलती गप्पों के दिए
मुद्दत हुई— मेरी दृष्टि में ठहर चुका
क़ब्र में जलते दियों का टिमटिमाता अक्स

मैं अब जहाँ खड़ा हूँ
हाथ-भर पर बिना भूकंप आए, मर गए मेरे घर का मलबा है

पाँच कोस पर थाना है
यों ही कदम-कदम पर आढ़ती, पटवारी और नंबरदार का दफ्तर है
या कंधों पर बैठे वक़्त के हाथ के चाबुक की आवाज़ है

और क़ब्रिस्तान?
आप जहाँ खड़े हैं
बिल्कुल, उसी जगह का पड़ा हुआ उलटा नाम है।

[1. पंजाब की एक प्रसिद्ध लोककथा।]

है तो बहुत अजीब

'गर तुम मुकलावे न जातीं, तुम्हें भ्रम रहना था
कि रंगों का अर्थ फूल ही होता है
बुझी हुई राख की गंध नहीं होता
तुमने मुहब्बत को किसी मौसम का नाम ही समझते रहना था

तुमने शायद सोचा हो—

तुम्हारे करोशिए से बनाए अक्षर एक दिन बोल उठेंगे
या गँदलाए पानियों में भीग न सकेंगे
बटन जोड़-जोड़कर बुने हुए बत्तख के पंख
तुमने कभी न सोचा होगा कि मुकलावा
दहेज के बर्तनों की खनक में
नूपुर की चुप का बिना क.फ़न जलना है
या रिश्तों के सेंक में, रंगों का तिड़क जाना है—
सुरिन्दर कौर[1] को फिर कभी नहीं दिखती
हादसों के इंत.ज़ार में बैठी छिंदो
इस कदर बन जाती है, महज घटनाओं की दीवार
असल में मुकलावा कभी न आने वाली समझ है
कि किस तरह
कोई भी गाँव
धीरे-धीरे बदल जाता है 'दानाबाद' में
मुकलावा[2] असल में लालसाओं का पिघलकर
चारपाइयों, पीढ़ों, बुहारियों में बदलना है...
है तो बड़ा अजीब कि हथेलियों पर पाले सच को
ऐसे ही कच्ची-सी मेंहदी से झिड़क देना

या उजड़ गए मेले के वीरान अखाड़े की
साँय-साँय की साँसों में पिरो लेना
या जोते हुए खेतों में द.फ़न
ह.ज़ारों बार कुचली पगडंडियों को याद करना

अब जबकि किनारे पर ही डूब गई है बटनों वाली बतख
अभी भी हादसों के इंत.ज़ार में बैठी है छिंदो
महज घटनाओं की दीवार के उस पार
जो कभी कोई लाँघ न सका
है तो बड़ा अजीब कि मैं कुछ नहीं लगता तुम्हारा
दीवार के इधर भी और उधर भी, मरी हुई
और मरने जा रही बत्तखों को उठाए फिरता हूँ !

[1. पंजाब की प्रसिद्ध गायिका 2. गौना।]

बेवफ़ा की दस्तावेज़

जानता हूँ— उसे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता होगा
मेरे भीतर मरे पड़े भँगड़े की लाश को देखना,
गाँव से शहर, शहर से देश
और देश से बिना देश की हो गई मेरी प्यास के बनेरे पर सूख रही
अलगोज़े की कली उसे लगती होगी
किसी तिड़के रिकार्ड पर घरघराती सुई की तरह
उसे रोज़ के शराबी बाप की बडकों में सो गई आन की तरह
और-और सा लगता होगा
मेरी आँखों में बिंदु जितना बच गया
क्षितिज तक फैले हुए खेतों का बिम्ब...

जानता हूँ— वह भयभीत मृग की तरह बहुत कुछ करेगी
चूज़ों का खुड्डा खोलते हुए काँप जाया करेगी यह सोच
कहीं निकलते ही चूज़े बाँग देनी न सीख जाएँ
और चढ़ जाएँ न आते त्योहारों की भेंट...

शायद वह तोड़कर सारा गुहारा अकेला-अकेला उपला तोड़ेगी
शायद मिल जाए बेध्यान हो उतरकर गुम हुई तीन नग की मुँदरी

वह भोली-भाली तो खोजेगी नर्म कटोरियाँ?
अनचाहे गर्भ की तरह ठहर गई
मेरी घरों को 'मकान' समझने की जिद्दी बुद्धि का
कुछ इलाज करने के लिए—

अफ़सोस है— अब कोई भी छलाँग ढूँढ़ न पाएगी
उसके दूध के छन्ने में डूब चुका
मेरा ज़रा-सा अक्स

अफ़सोस— अब कभी न लौटेंगे
डोरियों संग उड़ गए पालतू कबूतर
और अफ़सोस
अफ़सोस की ज़बान सिर्फ़ उस्तादी है
फिर भी
किसी सहेली के 'माइयें' पर जब कभी उखड़ जाएगा
लड़कियों में उसका बोल— मैं ख़ुद ही समझ जाऊँगा
गीत की अगली पंक्ति, यानि कि
बहुत ज़रूरत है मामा की उस ब्याहता को
इस नाज़ुक से समय में

फिर भी— वह निश्चित जाने
कि नाज़ुक समय नहीं, इंसान होता है
मैंने जहाँ झेल ली है, अकड़ा गई भँगड़े की लाश
गाँव से मनफी हो-होकर बची खानाबदोशी—
और झेल सका हूँ बिन्दु में सिमट-सिमट गई
विराटता की जुंबिश

चलो मैं राँझा न हो सकने का गुनाहग़ार सही
इतना नहीं गया-गुज़रा कि लिख न सकूँ
तेरे शगुन पर बोलने के लिए परिवार की ओर से शिक्षा
जहाँ पैदा होते ही पड़ते हों विरहों के गोते
या स्वर्गों में बैठा बाबा फूल बरसाता है
या इक्कीस बिस्तर, एक सौ एक बर्तन
गहनों में बदला, रोही का शरीफ़ बीघा
ऐसे कुछ भी न दे सकना— के मुहावरे में बदल जाता है
वह निश्चित जाने— हमेशा की तरह ही सुरीला होगा
सतिगुरु रामदास का 'सूही राग आनंदों' के समय
वह निश्चित जाने— बड़ी मुद्दत से सीखा है
क़ब्रों का पत्थर तीसरे दिन फट जाना
और सीखा हुआ है भँगड़े ने पुनः साबुत ही बाहर आना
वह निश्चित जाने बाराती कर ही देंगे मेरे नाचते हुए के सिर
पर से वारने
जानता हूँ— ढोल और शहनाई की बिना जोड़ की सुर,

अस्पष्ट ही सही
किसी दूल्हे की मुट्ठी में पकड़ी तलवार
उसे खूब समझेगी।

[1. सिक्खों की शादी की धार्मिक रस्म।]

अपनी असुरक्षा से

यदि देश की सुरक्षा यही होती है
कि बिना जमीर होना ज़िंदगी के लिए शर्त बन जाए
आँख की पुतली में 'हाँ' के सिवाय कोई भी शब्द
अश्लील हो
और मन बदकार पलों के सामने दंडवत झुका रहे
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है

हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़
जिसमें उमस नहीं होती
आदमी बरसते मेंह की गूँज की तरह गलियों में बहता है
गेहूँ की बालियों की तरह खेतों में झूमता है
और आसमान की विशालता को अर्थ देता है

हम तो देश को समझे थे आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम
हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा
हम तो देश को समझते थे कुर्बानी-सी वफा
लेकिन 'गर देश
आत्मा की बेगार का कोई कारखाना है
'गर देश उल्लू बनने की प्रयोगशाला है
तो हमें उससे ख़तरा है

'गर देश का अमन ऐसा होता है

कि क़र्ज के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह
टूटता रहे अस्तित्व हमारा

और तनखाहों के मुँह पर थूकती रहे
कीमतों की बेशर्म हँसी
कि अपने रक्त में नहाना ही तीर्थ का पुण्य हो
तो हमें अमन से ख़तरा है

'गर देश की सुरक्षा को कुचलकर अमन को रंग चढ़ेगा
कि वीरता बस सरहदों पर मरकर परवान चढ़ेगी
कला का फूल बस राजा की खिड़की में ही खिलेगा
अक्ल, हुक्म के कुएँ पर रहट की तरह ही धरती सींचेगी
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है।

तुम्हारे बग़ैर

तुम्हारे बग़ैर मैं बहुत खचाखच रहता हूँ
यह दुनिया सारी धक्कमपेल सहित
बे-घर पाश की दहलीज़ें लाँघकर आती-जाती है
तुम्हारे बग़ैर मैं पूरे का पूरा तूफान होता हूँ
ज्वारभाटा और भूकंप होता हूँ

तुम्हारे बग़ैर
मुझे रोज़ मिलने आते हैं आइन्स्टाइन और लेनिन
मेरे साथ बहुत बातें करते हैं
जिनमें तुम्हारा बिल्कुल ही ज़िक्र नहीं होता
मसलन : समय एक ऐसा परिंदा है
जो गाँव और तहसील के बीच उड़ता रहता है
और कभी नहीं थकता
सितारे जुल्फों में गूँथे जाते

या जुल्फें सितारों में -एक ही बात है
मसलन : आदमी की असलियत हर साँस में बीच को खोजना है
लेकिन हाय-हाय! ....
बीच का रास्ता कहीं नहीं होता
वैसे इन सारी बातों से तुम्हारा ज़िक्र गायब रहता है

तुम्हारे बग़ैर
मेरे पर्स में हमेशा ही हिटलर का चित्र परेड करता है
उस चित्र की पृष्ठभूमि में
अपने गाँव की पूरे वीराने और बंजर की पटवार होती है
जिसमें मेरे द्वारा निक्की के ब्याह में गिरवी रखी जमीन के सिवा
बची जमीन भी सिर्फ़ जर्मनों के लिए ही होती है

तुम्हारे बग़ैर, मैं सिद्धार्थ नहीं— बुद्ध होता हूँ
और अपना राहुल
जिसे कभी जन्म नहीं लेना
कपिलवस्तु का उत्तराधिकारी नहीं
एक भिक्षु होता है

तुम्हारे बग़ैर मेरे घर का फर्श सेज नहीं
ईंटों का एक समाज होता है
तुम्हारे बग़ैर सरपंच और उसके गुर्गे
हमारी गुप्त डाक के भेदिए नहीं
श्रीमान् बी.डी.ओ. के कर्मचारी होते हैं
तुम्हारे बग़ैर अवतार सिंह संधू महज़ पाश
और पाश के सिवाय कुछ नहीं होता

तुम्हारे बग़ैर धरती का गुरुत्व
भुगत रही दुनिया की तकदीर होती है
या मेरे जिस्म को खरोंच कर गुज़रते अ-हादसे
मेरा भविष्य होते हैं
लेकिन किंदर! जलता जीवन माथे लगता है
तुम्हारे बग़ैर मैं होता ही नहीं।

दूतिक भाषा के ख़िलाफ़

जब मैं लड़खड़ाता बिल्कुल तुम्हारे क़दमों में गिरा था
तुम तो बुद्ध बन गए
लेकिन मैं तो अभी भी जख़्मी पंखों से डोल रहा हूँ
मैं मानसरोवर से बहुत दूर किसी सूखे हुए बाग से बोल रहा हूँ
कि अब तुम्हें नहीं
कलिंग के मैदान में
आखिरी साँस ले रहे सैनिक से कहता हूँ
इस तरह क्यों है
कि ज्ञान हमारी गर्दनों में पड़ी रस्सी की मरोड़ ही है
सैनिक, क्यों भला मुक्ति का रास्ता
तुम्हारी और मेरी आखिरी हिचकी के ही दर से गुज़रता है

गया के वटवृक्ष को चले गए पदचिन्हों को क्या पता नहीं
कि वक़्त मेरी आँखों में बूढ़ा हो रहा है
उनमें मिल ही जाएँगे
यशोधरा के पदचिन्ह किसी दिन आकर
फैलता मेरे लिए ही रहेगा हिमालय पर्वत हर पल
हे सैनिक, तुमने तो देखा है
इन नदियों के कभी इधर और कभी उधर फैलते
सिकुड़ते देश को—

और दूर चाँदनी रात के तीसरे पहर से मानसरोवर को
कभी भी पता न चला— आदमी क्यों और कैसे
कभी द्रविड़ और कभी आर्य बना
वह कभी जान न सका कि
कुरान शरीफ़ की आयतों और वेदों में कविता के छंद
क्यों धुआँ बनकर आदमी की नासिका और आँखों पर चढ़े ?

और मानसरोवर का छोड़ा हुआ जल
कभी न लौटा— इनके किनारे आदमी की इज्जत लूटते
ज्ञान की व्यथा बताने के लिए
सैनिक, मानसरोवर भला क्या जानता है
मैं उसके वाष्प का कतरा
हवा की बाँह में बाँह डाले इस बार आम-सी तफ़रीह के लिए
क्यों नहीं लौटा

मानसरोवर कोई अब्दाली तो नहीं
और न मैं साबिर की तरह धमकी-सा संदेश लेकर आया था
लेकिन एक बात बताऊँ?— शाहनवाज़ कहीं भी हो
सिर्फ़ एक बिना म्यान चमकती हुई चुप्पी
उसके संवाद के लिए शब्द बन जाती रही हैं—
और मेरे पंखों में सरसराता
माँ की छातियों से रिसता अमृत
कभी भी सातों में से किसी रंग की छाया में नहीं घुल पाया

और सैनिक, जानते हो?
भाषा अशक्ति की वजह से किस कद्र बदमाश है
कि जख़्म के लिए 'इतिहास' नाम का शब्द प्रयोग करती है
जख़्म-दर-जख़्म की पीड़ा के लिए 'सभ्यता'

यह शायद उड़ते पंछियों को 'हँस'
और 'मोती' को मटर, मूँग या चावल समझती है
इसे बस यह पता है-मानसरोवर देश नाम की मूर्खता को
निर्मित करने के लिए नदियाँ बहाती है
इसे बस यह पता है— वेदों और आयतों की कविता धुआँ होती है
इसके लिए तो मानसरोवर केवल झील है, सन्नाटा है
इसके लिए तो हरिवल्लभ या तानसेन या गुलाम अली द्वारा
शब्दों को अमूर्त्त बना ध्वनियों में बदल देना संगीत है
इसके लिए आ रही मौत की आहट में हंस गाने लगते हैं—
सहक रहे आदमी को
हंस का कहना

लेकिन यह बदमाशी बस भाषा की है केवल
कि कविता धुआँ बन जाती है

और आदमी अंधा होकर छींकता हुआ
परेड़ करता- हुक्म बजाता
और बहादुरी के तमगे लेने के लिए
अपनी धड़कनों से ख़फा सीने को
शैतान के आगे करता है
और शैतान उसमें सोने की कील गड़ाकर
सोने को अनाज, अन्न को वोदका में बदलने के ढंग बताता है
और फिर वोदका इंसान को गीदड़
और फिर लोमड़ी और फिर बाघ
और बाघों को समाज कर देती है

सैनिक, बताओ भला एक हंस कैसे कहे
कि टालस्टाय बहुत देर से आया था
और असल कहानी
हल चलाते किसान की रोटी उठाने से बहुत पहले शुरू थी—
हे सैनिक, 'गर ज़रा उठो
तो इस बदमाश भाषा को कलिंग की रणभूमि में ही मरती छोड़
कपिलवस्तु के सिद्धार्थ तक चलें
और शंकराचार्य से मिलते हुए
उस ईस्ट इंडिया कंपनी को पूरा ही ज्ञान लौटा दें
तुम बाद में धरती के किसी भी नंगे टुकड़े पर जा बसना
सागर से यह कहे बग़ैर कि वास्तविक इतिहास तो वही है
और मैं मानसरोवर से तुम्हारे लिए नदियों के हाथ संदेश भेजा करूंगा
जिप्सियों के गीतों जैसे
रमज़दार आंखों से किर रहे रब्ब से बूर जैसे
झरने की रमज़ जैसे संदेश
सैनिक 'गर ज़रा उठो
सैनिक, 'गर ज़रा उठो...

शोक-समारोह में

दाढ़ी में सूख गए आँसू के मातम में
आएँ दो पल के लिए मौन खड़े हो जाएँ
और ज़रा सोचें
इस बूढ़े ने ज़िंदगी को
गुड़ की डली की तरह कल्पित किया होगा
लेकिन उम्र-भर नज़रों से
प्याज का बिंब नहीं तोड़ सका।

सोचें चमकते दिन की मुस्कान के बारे में
जो हर रोज इसका खींचा हुआ रक्त लेकर
धीमे से उतर जाता रहा रात के तहख़ाने में
आएँ उस इतिहास के बारे में सोचें
जिसने इस साजिश को वक़्त का नाम दिया

राजधानी से बहुत दूर दम तोड़ गई
कमज़ोर आह की याद में
आएँ सिर झुकाएँ
और पल-भर के लिए विश्वास कर लें
कि मरती आह को
हमारे राष्ट्रीय झंडे से
बेहद प्यार आया होगा।

हमारे समयों में

यह सब कुछ हमारे ही समयों में होना था
कि समय ने रुक जाना था थके हुए युद्ध की तरह
और कच्ची दीवारों पर लटकते कैलेंडरों ने
प्रधानमंत्री की फोटो बनकर रह जाना था

धूप से तिड़की हुई दीवारों के परखचों
और धुएँ को तरसते चूल्हों ने
हमारे ही समयों का गीत बनना था

ग़रीब की बेटी की तरह बढ़ रहा
इस देश के सम्मान का पौधा
हमारे रोज़ घटते कद के कंधों पर ही उगना था
शानदार एटमी तजर्बे की मिट्टी
हमारी आत्मा में फैले हुए रेगिस्तान से उड़नी थी

मेरे-आपके दिलों की सड़क के मस्तक पर जमना था
रोटी माँगने आए अध्यापकों के मस्तक की नसों का लहू
दशहरे के मैदान में
गुम हुई सीता नहीं, बस तेल का टिन माँगते हुए
रावण हमारे ही बूढ़ों को बनना था
अपमान वक़्त का हमारे ही समयों में होना था
हिटलर की बेटी ने ज़िंदगी के खेतों की माँ बनकर
ख़ुद हिटलर का 'डरौना'
हमारे ही मस्तकों में गड़ाना था

यह शर्मनाक हादसा हमारे ही साथ होना था
कि दुनिया के सबसे पवित्र शब्दों ने

बन जाना था सिंहासन की खड़ाऊँ—
मार्क्स का सिंह-जैसा सिर
दिल्ली की भूल-भुलैयों में मिमियाता फिरता
हमें ही देखना था
मेरे यारो, यह कुफ्र हमारे ही समयों में होना था

बहुत दफा, पक्के पुलों पर
लड़ाइयाँ हुईं
लेकिन जुल्म की शमशीर के
घूँघट न मुड़ सके [1]
मेरे यारो, अकेले जीने की ख़ाहिश कोई पीतल का छल्ला है
हर पल जो घिस रहा
न इसने यार की निशानी बनना है
न मुश्किल वक़्त में रकम बनना है

मेरे यारो, हमारे वक़्त का एहसास
बस इतना ही न रह जाए
कि हम धीमे-धीमे मरने को ही
जीना समझ बैठे थे
कि समय हमारी घड़ियों से नहीं
हड्डियों के खुरने से मापे गए

यह गौरव हमारे ही समयों को मिलेगा
कि उन्होंने नफरत निथार ली
गुज़रते गँदलाए समुद्रों से
कि उन्होंने बींध दिया पिलपिली मुहब्बत का तेंदुआ
और वह तैरकर जा पहुँचे
हुस्न की दहलीज़ों पर

यह गौरव हमारे ही समयों का होगा
यह गौरव हमारे ही समयों का होना है।

[1. तलवारों का रुख न मुड़ना।]

कामरेड से बातचीत

1.

ऐ ठंडी देगची, तुम्हें और
तुममें उबल रहे वक़्तों को सलाम
ऐ फिसलते पक्षी, तुम्हें और
तुममें जाम हुए अंबर को सलाम
हे जलते वनों के योगी
तुम्हारे सीलन भरे जत-सत
और तुम्हारे राख हो गए रब्ब— दोनों को नमस्कार

नमस्कार— मेले में रूठे खड़े बच्चे को
जिसकी जिद है लाख के रंगीन घोड़े के लिए
और गैंडे की बेसुरी शहनाई के लिए
सलाम— भीग रही मसों पर आदतन फिर रहे
जानदार हाथ को
प्यारे कामरेड,
हम दोनों के जिस्म में
पल-पल घट रहे शमशान को मेरी वंदना है
कामरेड, जानते हो यह बूर्ज्वाजी
शराब की तरह पुरानी हो गई है
और हम माँस के टुकड़े की तरह
कामरेड, मध्यवर्ग अभी भी भगोड़ा है—
संघर्ष से नहीं, यह पागलखाने से
निकल भागा मुजरिम है और
कभी तो घरवालों, कभी पुलिस की तरह
सिद्धांत इसका पीछा कर रहे हैं

कामरेड, क्षमा करना, उसे गाली देना ठीक नहीं
जो केवल अपनी ही पीछे छूट गई गूँज है

यह वक़्त बहुत खूँखार है साथी!
कि महान एंगेल्स की 'परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राज्य'
हमने एक साथ पढ़ी थी
तुमने उस दिन ख़त्म हो रही व्यक्तिगत संपत्ति पर थूका
परिवार से विदा लेकर
राज्य से टकराने चले गए
और मैं घर की छतों से गिर रहे घुन का
राजसत्ता की तरह मुकाबला करता हुआ
'परिवार' शब्द से अर्थों के ख़त्म हो जाने को रोकता रहा

यह बहुत खूँखार इत्तिफ़ाक है साथी!
कि महान एंगेल्स को पढ़ते हुए
जब 'इत्तिफाक' के महत्त्व का ज़िक्र आया
तब तुम भाषा और दिमाग के फलने में
यंत्र का योगदान सोचते हुए
गुमसुम चले गए थे
कमरे से बाहर जहाँ रात और सुबह
धरती के उलटे सिरों पर खड़े होकर
लड़ रही थीं कच्ची उम्र के आशिकों की तरह
एक होने के लालच में

वैसे तो हर चीज़ सैद्धांतिक स्तर पर सही थी
ठीक था मुझे अकेला छोड़ जाना तुम्हारा
इत्तिफ़ाक के बारे में पढ़ने के लिए
तुम्हारा संघर्ष में कूदना
और मेरा पीठ दिखा जाना
तुम नहीं समझ सकते कामरेड,
सब कुछ सही था।

2.

अपनी छोटी उम्र में तिनके चुनकर
सृजित जंगल
जागते सपनों में फैल-फैलकर सघन हो गए
और उन जंगलों से कभी-कभी
तुम्हारे फायरों की आवाज़
यहाँ पहुँचती रही है
मैं उसे माँ की गूँगी आहों में
भरकर सुनता रहा हूँ
लेकिन वह चंदरी फायरों की आवाज़
कभी भी मिल न सकी
अपनी गुड्डो के पगले गीतों से

कामरेड, यह गुड्डो बहुत क्रांतिविरोधी निकली
निरी वर्ग-शत्रु!
यह मेरी विद्वता भरी पुस्तकों के नीचे
गीटे छिपा देती है
लाख समझाने पर भी समाज के भविष्य से
थाली खेलने की ज़्यादा चिंता करती है
उसका लेनिन को 'गंजा पकड़नेवाला' कहना
और माओ को शर्मा थानेदार-जैसे गलीज से मिला देना
भला तुम ख़ुद सोचो
कितना असहनीय है...

तुम्हारे बाद मैं गया तो कहीं नहीं
तुम अपनी दूरंदेशी से
जिसे टूटती साँसों में बेसहारा छोड़ गए थे
मैं उस बदनसीब घर के
अ-घर होने के सफ़र में शामिल रहा हूँ
तुम्हारे बाद मैं कामरेड,
घर के टूटने को
घरों का फैसला समझने का अभ्यास करता

बारिश की तरह बरसा हूँ
सिकुड़ती जा रही छतों पर
फैलते जा रहे आँगनों में
मैं जीवन में भागता रहा हूँ
उस आदमी की प्यास से
जिसे पता हो
अगले ही क्षण अपने अंधे हो जाने का
कामरेड, इस तरह भागते व्यक्ति को
'दौड़ाक' या 'भगोड़ा' कहने में ज़रा सुविधा तो है
लेकिन हर दौड़ का आना या जाना
मेनिफेस्टो बिल्कुल नहीं होता।

3.

कामरेड, स्टेट तुम्हारे लिए सिर्फ़ एक खुरली है
पाँच रोमन ईंटों की
जहाँ तुम्हें चार सींगोंवाला साँड पलता दिख रहा है
मेरी ओर देख— सिद्धांतों की आवारा दस्तावेज को...
मेरे लिए अब 'अदालत' शब्द या परिभाषा नहीं रही
बाँस के सुए की तरह मेरे बीच में से उग आता है
हर पेशी का दिन—
शायद मैं अपने इंसान होने पर
अभी भी यकीन करता
'गर कहीं अंतरिक्ष के संदेश-सी अजीब
एक आवाज़ के भीतर के अँधेरे की
मैंने साँय-साँय न सुनी होती
'पा...श...बनाम...स्टे...ट!'
कामरेड, क्या सच मान सकते हो
उस आवाज़ को सुनने के बाद
न कोई पाश रह सकता है, न स्टेट...

काश, मैंने भोगी न होती, अंतिम सिरे की खौफ़नाक निर्लिप्तता
जो फाइलें चुनते नायब कोर्ट के

मुँह पर टपकती थी
काश, मुझे उस तरह की नींद का अंदाज़ा न होता
जिसमें लंच से पहले और बाद
जज तैरते हैं
जिन्होंने देखा हुआ है दोआबे [1] में
दंगों के बाद बचा तलवन नामक गाँव
वे मेरा दिल समझ सकते हैं
जहाँ मैंने कभी एक चंडीगढ़ बनाना चाहा था

प्यारे कामरेड, अब व्यर्थ हैं मेरे लिए
तुम्हारी खुफिया रातों के स्कूल
मैंने धरती की तपती लौह के नीचे
देखा है एकटक जलता मेकियावली का शमशान
मैंने स्टेट को देखा है लोगों के सहारे लड़ते
कभी लोगों से, कभी लोगों के लिए
मैंने देखे हैं अरस्तू व स्तालिन
सदियों लंबे युद्ध लड़ते
केवल यह परिभाषित करने के लिए
कि आदमी किस किस्म का पशु है

'गर पशु को भूलकर देखो कामरेड,
बहुत-सी बातों को ख़ुद आसमान अभी नहीं जानता
जिनसे वाक़िफ है सिर्फ़ आदमी का लहू
आदमी के लहू में बंदूक की परछाईं डूब जाती है
शाम के झुटपुटे में जैसे
थके जाट के शराबी गीत डूब जाते हैं
और यह जो बहस की ख़ातिर बहस कर रहे यों ही
धरती, सितारे, समुद्र,
ऊर्जा, लहरें और चाँद— इनके मुफ़्त के शोर में घिरा
आदमी का बहादुर लहू
बेहद सहनशील होता है
कामरेड, तुम्हारा स्तालिन बहुत बड़बोला था
जानता नहीं था कि आदमी के रक्त में
सही इतिहास का सही बदल भी होता है

जिसे वह सही इतिहास कहता था
वह सिर्फ़ इत्तिफ़ाक के घूमते पंखे के
आगे आ गए पंखों में एक पंख था

किसी भी आज की गर्दन पर हाथ रखकर
वक़्त को पकड़ने का ऐलान
तुम्हें कैसा लगता है कामरेड!
और शब्द 'STATE' में दोनों में से तुम्हें
कौन-सी 'T' पसंद है कामरेड?
अफलातून का गणराज्य
अरस्तू का राज्यधर्म
और ट्राट्स्की की खोपड़ी में धँसी कोमिनटर्न की कुल्हाड़ी
कामरेड, तुम्हें तीनों में कोई रिश्तेदारी लगती है?
आदमी का गर्म लहू ठंडे फर्श पर फैलना
और नस्ल में सुधार का बहाना
तुम्हें कैसा लगता है कामरेड?

इस चार सींगवाले साँड ने तो हमेशा ही
मनुष्य की आत्मा से हरियाली चाटी है
मनुष्य की आत्मा को सभी युगों में
इस प्रेत की हवा आती रही है
मैंने इस प्रेतात्मा की शिला काटते तपस्वी देखे हैं
जिन्हें धीरे-धीरे तपस्या करने का ही नशा हो जाता है
और वश करने की इच्छा
पिछले जन्म की तरह भूल जाती है
मैं नहीं समझता साथी, अब कभी
यह प्रेत बनने की आदी हो गई आत्मा
अगला जन्म भी लेगी
मैं नहीं समझता साथी,
तुम्हारे लिए भी शिला ही काटना
कब तक समय काटना नहीं बनता

कामरेड, क्या बनेगा उस दिन
जब कभी राजसत्ता छीनने की हसरत को

ऐसे हँसना पड़ा
जैसे कोई वृद्ध युगल हार चुके अंगों से
वह चंद्रमा पकड़ना चाहे
जो गौने की पहली भोर में अस्त हुआ था

4.

तुम्हें पता नहीं कामरेड,
तुमने शब्दों को क्या कर डाला है
उनमें लिपटी संवेदनाओं ने
भला तुम्हारा क्या छीना था?
क्यों तुमने उन्हें अफसरशाह दलालों की
तक़दीर दी
कामरेड, क्यों वर्ग-घृणा के ढेर
उनका दहेज बन गए?

सिर्फ़ अपनी सुविधा के लिए तुमने
शब्दों को तराशना सीख लिया है
जैसे हदबंदी के लिए कोई पटवारी से मिलता है
तुमने उन्हें इस तरह कभी नहीं देखा
जैसे अंडों में मचल रहे चूजें हों
जैसे बारिश में चू रही साँवली दोपहर में
धूप घुली हो

मैंने शब्दों को झेला है, उनके तीखे नुकीले रूप में
किसी भी मौसम के कोप से भागनेवालों को
मैंने अपने रक्त में शरण दी है
मैं गुरु गोविंद सिंह नहीं—
इन्हें कविता का कवच पहनाकर भेजने के बाद
बहुत-बहुत देर रोया हूँ
जब तुम्हारी तक़दीर के पिटे हुए शब्द
प्रस्तावों की धूप में जलते हैं

मेरी कविता की छाया
उनकी मौत के साथ लड़ती हुई
अपने बदन की नज़ाकत खो बैठती है
मैं जिससे राक्षसी टोलों के घेरे तोड़ सकता हूँ
तुम उसकी कलमें तोड़कर
कायर आलोचकों के लिए मौज की दावत बना देते हो कामरेड!
खुफिया पुलिस के विद्वानों के लिए बने तो बने
कामरेड, तुम्हारे लिए क्यों बनती है
शेखी... कवि की पराजय
कामरेड, तुमने पराजितों से घृणा करना सीखा है
उन्हें तुम जानते भी नहीं
जो केवल जीत न सके।

5.

अखबार तुम्हें कभी-कभी मिलता है कामरेड?
तुम इन टुकड़खोर ख़बरों का बिल्कुल सच न मानना
पिछले वर्ष जो डूबकर मरी थी गाँव के पोखर में
वह माँ नहीं थी
यों ही नीली छत से ईंट उखड़कर जा गिरी थी
माँ तो पहले 'रेड' पर ही
गोर्की के नावल में तैरने की कोशिश करती हुई
पुलिस की पहुँच से भाग निकली थी
वह अब भी कभी तो नावल के किनारों को
घूरती है
और कभी अपनी ही आशिष की तरह खुरने लगती है

और पिछले दिनों जिस शायर के
सुरक्षित पार्टी में मिल जाने की ख़बर थी
वह मैं नहीं था, बाहर की दीवार के पास का डेक वृक्ष था
जिससे बुरी आत्माएँ पुलिस की वर्दी पहन
उतरना और चढ़ना सीख गई थीं
मैं तो उस ख़बर के छपने से बहुत पहले ही

जब शब्दों में रात उतर रही थी
और अँधेरे के नाग नामों पर कुंडली मार रहे थे
मैं शब्द 'पार्टी' की बची-खुची संवेदना चुराकर
फिसल गया था चोरी से
मनुष्य के हो-हल्ले में
जब मेरे ही कदम सुन रहे थे मुझे
प्रेम-कविताओं की तरह
मैं उस डूब रही संवेदना को सावधानी से
कव्वों के अंडों में रख आया था

वैसे मैंने साधुसिंह और जीरवी [1] *के पास*
कई बार ख़बरों का गिला किया
उनका कहना है कि ख़बरों का लकवा
उन्हें अपने पैरों पर चलने नहीं देता
तुम्हारे पास पहुँचने के लिए
वे हमारी मौत की बैसाखी माँगती हैं
इनका सच मानते तो
हम तुम्हें कई बार रो चुके होते
मैं हर बार झपट की ख़बर पढ़कर
माँ से कहता हूँ—
वह तुम नहीं, तुम्हारे नाम का कोई और योद्धा था
माँ को व्याकरण की बारीक़ी का पता नहीं न
बुढ़ापे की सर्द मासूमियत में ठिठुरती हुई
वह व्यक्तिवाचक संज्ञा को जातिवाचक और जातिवाचक को
समूहवाचक समझ लेती है
उसके लिए जब भी नाम पर गोली चलती है
कोई जाति या किसी भाव का क़त्ल होता है
कामरेड, माँ वैसे ही पगलाई-सी है
हम दोनों और ख़बरें उसे बदल नहीं सके
वह तुम्हें देर से आने के लिए
घर की किसी भी चीज़ से
या पूरे घर से पीटेगी और बाद में
तुम्हारे मुँह में सूखा हुआ दूध ठूँस देगी!

[1. पंजाबी अखबारों के सम्पादक।]

6.

घर और ख़बरों के बावजूद
मैं हाजिर हूँ कामरेड!
जैसे कोई आला झाँकता है उजड़े घर के मलबे से
जले हुए प्रेम-पत्र में जैसे कोई शब्द बच जाता है
जैसे परदेश कमाई करने गए की
बंद बक्से में लाश लौटती है
जैसे देर से गुम बेटे के संदूक से करधनी मिल जाए
गर्भ के गिरने से जैसे
किसी के मन में कँवारापन लौट आए
या गीत मुँह पर न आए— गीत का जैसे
भाव तिर आए

मैं कुछ इस तरह बच आया
मायाधारियों की पुलिस से
अपने मध्यवर्गीय पाखंडी दंभ से
कहाँ है लाल पिस्तौल तुम्हारा कामरेड!
इसे मेरी बूर्ज्वा उदासी पर आजमाओ

कवि हूँ न?
मेरे सीने में हर दिशा पश्चिम है
जिसमें डूब जाते हैं बड़बोले सूर्य
ऐसे ही कभी-कभी जब ज़्यादा बोले
पता नहीं चलता कब असमय छिप जाता है
वर्ग-घृणा का सूर्य

और मेरा समय की बूढ़ी हुई मुस्कान को
भींचने का मन होता है
चाहने लगता हूँ पल के पल
अचानक कहीं से आए न्यूटन का वह दरवेश डायमंड
फिर एक बार फेंके जलती मोमबत्ती

मेरे ज़ेहन के खुले दराज में
इससे पहले कि मेरे ज़ेहन में मौजूद
तमाम अधूरी सूचनाएँ
किसी सिद्धांत में बदलें, उन्हें जला दें
उनके न जलने में बहुत ख़तरा है

कवि हूँ न?
अकारण ही घिर आता है दिल
वैसे भला क्या है
गूँगे पत्थरों में जज़्ब हो रही शाम
गधे के साज में हिलती ईंटों का रगड़-संगीत—
झड़ने से बच गए पतझड़ी पत्तों पर
टिकी हुई मटमैली धूप
या भला क्या है?
धरती की गोद में यह प्यारा संसार
चित पहलवान की आँखों में घूमते अखाड़े-जैसा
जो खामख़ाह रिस आता है
मेरी मरुस्थली निगाहों में

सोचें तो क्या है कामरेड!
वैसे भला क्या है कामरेड!

पंजाब संदर्भित कविताएं

(1978-88)

कुएँ

कुएँ अब बहुत थोड़े बचे हैं
लेकिन वे बिल्कुल अकेले-से जहाँ भी हैं
अँधेरे से सुरक्षित नहीं हैं
जो उनमें प्यास के बहाने उतरता है
और मौत भर देते हैं
सबसे भोले-भाले पंछियों के अंडों में

फसलों के लिए बेकार होने के बाद
कुएँ अब बहुत थोड़े-से बचे हैं
उनकी खास ज़रूरत नहीं है 'भागों भरी' धरती को
लेकिन अँधेरे को उनकी ज़रूरत है
किसी भी गुटकती उड़ान के खिलाफ़
अँधेरा उन्हें मोर्चे के लिए इस्तेमाल करता है।

कुएँ अब बेशक थोड़े हैं
रोज शंख की गूँज से डरती नींद में
मौत की श्लाघा करते हुए भजनों की तलाश में
और अतीत के गुण गाती चिंघाड़ों में
लेकिन अभी भी काफी हैं कुएँ
उनमें पगलाया अँधेरा अभी चिंघाड़ता है
दुआ के लिए उठते हाथों की हथेलियाँ जो कुओं का सृजन करती हैं

सबूते-इंसान को निगलने के लिए
सिर्फ़ उसके अंदर का अँधेरा काफी है
इन कुओं में तिलमिलाता फनियर अँधेरा
किसी भी वक्ष के भीतर खिली रोशनी की साँस खींच लेता है
कुएँ तुम्हें मृत सदियों से जोड़ते हैं

कुएँ तुम्हें गूँज के नशे से लगाकर
अपने ज़ख़्मों को गाना सिखाते हैं
कुएँ नहीं चाहते कि धुल जाए आपकी स्मृति से
खोपों[1] के जुतने का दृश्य
वस्तु या मशीन नहीं
अब कुएँ मुकम्मिल फ़िलासफी हैं
कुएँ तो चाहते हैं उनके संग जुड़ी हर भयावहता
आपके भीतर पीछे की ओर गिड़ती रहे

कुएँ आपके साथ बसों में सफ़र करते हैं
उनके भीतर का अँधेरा आदमी की भाषा छीन
सिर्फ़ मिमियाना सिखाता है
कुएँ आपकी छातियों में सरसराते हैं
शवयात्रा से लौटते हुए जब आप में
बच जाने की कृतज्ञता गाती है
बचाव का आखिरी युद्ध लड़ता अँधेरा
अब बेहद खूँखार हो चुका है
बचाव का आखिरी युद्ध लड़ता अँधेरा
हर चीज़ बेधते हुए
आपकी जगमगाती दुनिया के आर-पार निकलना चाहता है
आपके बोलों की चमक में रिसने के लिए
अँधेरा अपने चोर अड्डों समेत अब बेहद तरल हो चुका है
इस तरल अँधेरे के खिलाफ़
अब आप पहले की तरह नहीं लड़ सकते
कोई सुविधाजनक और अनचाही ठंडी लड़ाई

इनके तरल अँधेरे के खिलाफ़
आपका सुविधामय अस्तित्व बेहद नाकाफी है
इतने तरल अँधेरे के बिल्कुल पड़ोस में जीते हुए
आप निहत्थे नहीं चल सकते।

—हस्तलिखित पत्रिका 'हाक' (1982) से

[1. आँखों ढंके बैलों का जुतना।]

धर्म-दीक्षा के लिए विनयपत्र

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं
तेरे इस तरह गरजने के बाद
आदमी तो दूर-दूर तक नहीं बचे
अब सिर्फ़ औरतें हैं या शाकाहारी दोपाए
जो उनके लिए अन्न कमाते हैं
धर्मगुरु, तुम सर्वकला-संपन्न हो!
तुम्हारा एक मामूली-सा तेवर भी
अच्छे-खासे परिवारों को बाड़े में बदल देता है
हर कोई दूसरे को कुचलकर
अपनी गर्दन तीसरे में घुसेड़ता है
लेकिन धर्मगुरु, मेरी तो एक ही गर्दन है—
मेरे बच्चे की...
और आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं

मैं तुम्हारे बताए हुए इष्ट ही पूजूँगी
मैं तुम्हारे पास किए हुए भजन ही गाऊँगी
मैं दूसरे सभी धर्मों को फ़िजूल कहूँगी
लेकिन धर्मगुरु, मेरी एक ही ज़बान बची है—
मेरे बच्चे की...
और आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं

मैं पहले बहुत पगलाई रही हूँ अब तक
मेरे परिवार का जो धर्म होता था
मेरा उस पर भी कभी ध्यान नहीं गया
मैं परिवार को ही धर्म मानने का कुफ़्र करती रही हूँ
मैं पगली सुन-सुनाकर, पति को ही ईश्वर कहती रही हूँ

मेरे जाने तो घर के लोगों की मुस्कराहट और त्योरी ही
स्वर्ग-नरक रहे—
मैं शायद कलियुग की बीट थी धर्मगुरु!

तुम्हारी गरज से उठी धर्म की जयकार से
मेरे से बिल्कुल उड़ गया है कुफ्र का कोहरा
मुझ मुई का अब कोई अपना सच न दिखेगा
मैं तेरे सच को ही एकमात्र सच माना करूँगी...
मैं औरत बिचारी तेरे जाँबाज शिष्यों के सामने हूँ भी क्या
किसी भी उम्र में तेरी तलवार से कम खूबसूरत रही हूँ
किसी भी रौ में तुम्हारे जलाल से फीकी रही हूँ
मैं तो थी ही नहीं
बस तुम ही तुम हो धर्मगुरु!

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
वैसे अगर सात भी होते
वे तुम्हारा कुछ न कर सकते थे
तेरे बारूद में ईश्वरीय सुगंध है
तेरा बारूद रातों को रौनक बाँटता है
तेरा बारूद रास्ता भटकों को दिशा देता है
मैं तुम्हारी आस्तिक गोली को अर्घ्य दिया करूँगी

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
और आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं।

[हस्तलिखित पत्रिका 'हाक' के अंक 17 से।]

बेदखली के लिए विनयपत्र

मैंने उम्र-भर उसके ख़िलाफ़ सोचा और लिखा है

अगर उसके अफ़सोस में पूरा देश ही शामिल है
तो इस देश से मेरा नाम खारिज कर दें

मैं खूब जानता हूँ नीले सागरों तक फैले हुए
इस खेतों, खानों, भट्ठों के भारत को—
वह ठीक इसी का साधारण-सा एक कोना था
जहाँ पहली बार
जब दिहाड़ी मज़दूर पर उठा थप्पड़ मरोड़ा गया
किसी के खुरदरे बेनाम हाथों में
ठीक वही वक़्त था
जब इस क़त्ल की साजिश रची गई
कोई भी पुलिस नहीं खोज पाएगी इस साजिश की जगह
क्योंकि ट्यूबें सिर्फ़ राजधानी में जगमगाती हैं
और खेतों, खानों व भट्ठों का भारत बहुत अँधेरा है

और ठीक इसी सर्द अँधेरे में होश सँभालने पर
जीने के साथ-साथ
पहली बार जब इस जीवन के बारे में सोचना शुरू किया
मैंने ख़ुद को इस क़त्ल की साजिश में शामिल पाया
जब भी वीभत्स शोर का खुरा खोज मिटाकर
मैंने टर्राते हुए टिड्डे को ढूँढ़ना चाहा
अपनी पूरी दुनिया को शामिल देखा है

मैंने हमेशा ही उसे क़त्ल किया है
हर परिचित की छाती में ढूँढ़कर
अगर उसके क़ातिलों को इस तरह सड़कों पर देखा जाना है
तो मुझे भी मिले बनती सज़ा
मैं नहीं चाहता कि सिर्फ़ इस आधार पर बचता रहूँ
कि भजनलाल बिश्नोई को मेरा पता मालूम नहीं

इसका जो भी नाम है— गुंडों की सल्तनत का
मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूँ
मैं उस पायलट की
चालाक आँखों में चुभता भारत हूँ

हाँ, मैं भारत हूँ चुभता हुआ उसकी आँखों में
अगर उसका अपना कोई खानदानी भारत है
तो मेरा नाम उसमें से अभी खारिज कर दो।

['समता' (पंजाबी) जनवरी 1985 में प्रथम प्रकाशित।]

सबसे ख़तरनाक

मेहनत की लूट सबसे ख़तरनाक नहीं होती
पुलिस की मार सबसे ख़तरनाक नहीं होती
गद्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे ख़तरनाक नहीं होती

बैठे-बिठाए पकड़े जाना— बुरा तो है
सहमी-सी चुप में जकड़े जाना— बुरा तो है
पर सबसे ख़तरनाक नहीं होता

कपट के शोर में
सही होते हुए भी दब जाना— बुरा तो है
किसी जुगनू की लौ में पढ़ना— बुरा तो है
मुट्ठियाँ भींचकर बस वक़्त निकाल लेना— बुरा तो है
सबसे ख़तरनाक नहीं होता

सबसे ख़तरनाक होता है
मुर्दा शांति से भर जाना
न होना तड़प का सब सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर आना
सबसे ख़तरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना

सबसे ख़तरनाक वह घड़ी होती है
आपकी कलाई पर चलती हुई भी जो
आपकी निगाह में रुकी होती है

सबसे ख़तरनाक वह आँख होती है
जो सब कुछ देखती हुई भी जमी बर्फ़ होती है
जिसकी नज़र दुनिया को मुहब्बत से चूमना भूल जाती है
जो चीज़ों से उठती अंधपन की भाप पर ढुलक जाती है
जो रोज़मर्रा के क्रम को पीती हुई
एक लक्ष्यहीन दुहराव के उलटफेर में खो जाती है

सबसे ख़तरनाक वह चाँद होता है
जो हर हत्याकांड के बाद
वीरान हुए आँगनों में चढ़ता है
पर आपकी आँखों को मिर्चों की तरह नहीं गड़ता है

सबसे ख़तरनाक वह गीत होता है
आपके कानों तक पहुँचने के लिए
जो मरसिए पढ़ता है
आतंकित लोगों के दरवाज़ों पर
जो गुंडे की तरह अकड़ता है

सबसे ख़तरनाक वह रात होती है
जो ज़िंदा रूह के आसमानों पर ढलती है
जिसमें सिर्फ़ उल्लू बोलते और हुआँ हुआँ करते गीदड़
हमेशा के अँधेरे बंद दरवाज़ों-चौगाठों पर चिपक जाते हैं

सबसे ख़तरनाक वह दिशा होती है
जिसमें आत्मा का सूरज डूब जाए
और उसकी मुर्दा धूप का कोई टुकड़ा
आपके जिस्म के पूरब में चुभ जाए

मेहनत की लूट सबसे ख़तरनाक नहीं होती

पुलिस की मार सबसे ख़तरनाक नहीं होती
गद्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे ख़तरनाक नहीं होती।

[संभवतः अपूर्ण रह गई एक लंबी कविता का अंश।]

सपने

सपने
हर किसी को नहीं आते
बेजान बारूद के कणों में
सोई आग को सपने नहीं आते
बदी के लिए उठी हुई
हथेली के पसीने को सपने नहीं आते
शेल्फों में पड़े
इतिहास-ग्रंथों को सपने नहीं आते

सपनों के लिए लाज़िमी है
झेलनेवाला दिलों का होना
सपनों के लिए
नींद की नज़र लाज़िमी है

सपने इसलिए
हर किसी को नहीं आते।

[पाश की आवाज़ में यह कविता उपलब्ध है, जिसकी टेप पाश के परिवार के पास है। पाश ने यह कविता (संभवतः अधूरी) अपने मित्रों— जोगिंद्र बाहरला आदि की महफ़िल में सुनाई थी। इस कविता को उनकी अब तक प्रकाशित अंतिम कविता 'सबसे ख़तरनाक' से जोड़कर देखना चाहिए। दोनों कविताओं में एक ही संवेदना दिखाई देती है।]

बिना शीर्षक बिखरी हुई अधूरी व कुछ अन्य कविताएँ

(पत्र-पत्रिकाओं व डायरी के पन्नों से)

यारों से बातचीत[1]

नहीं शमशेर, मैं कोई कोलंबस नहीं
मैं न ही भारत खोजने चला था, न अमेरिका
मेरा तो अपना घर ही न जाने क्यों
आनंदपुर के किले की तरह सुरक्षित न रह सका
और अब तो शुष्क सिरसा [2] ही पार करने से
घर के लोगों की आँखों में उल्लू से उतर आए हैं,
तब से कूँजों की डार से बिंब
अतिश्योक्ति जैसे लगते हैं—

अब तो चिंता है शमशेर
मेरे में बस गया परदेस तुम्हारे पंजाब को
कहीं निगल न जाए
तब तक भय न था
मंजकी [3] वाले जब तक हमारे गाँवों में
बेटी-बेटों का रिश्ता करने से गुरेज़ करते थे
जब तक मालवा 'हरि के पत्तन' [3] से शुरू होता था
जब तक अमृतसर, बाबा बकाला [3]
ढाड्डियों की सारंगी में ही अंतर्निहित थे
तब तक तो बिल्कुल ही भय न था
जब तक परदेस मेरे जिस्म के बस बाहर-बाहर ही था

अब तो शमशेर जब सूखी-सी सिरसा पार की है
रास्ते में भले ही कोई चमकौर [3] या सरहिंद [3] न आए
दोबारा मेल न हो सकेगा
बिखर गए ग़रीब से घर के नक्शों का
यार मुझे क्या रुकना था माछीवाड़े [3] की झाड़ी में
न जाने कब और कैसे
झाड़ी ख़ुद मेरे भीतर बस गई

तब से झाड़ी से हर रोज़ कोई
(तुम दूसरे आलमगीर के लिए न समझ लेना)
मेरी बिना जन्मी बेटी को चिट्ठियाँ लिखता है
उन चिट्ठियों में न कोई राज़ी-खुशी न राम-राम
बस लिखा होता है कि साढ़े तीन हाथ आदमी भी
बड़े मज़े से चौबारे जैसे हाथी को सीधा कर सकता है
या— धरती नहीं, सिर्फ़ सूरज ही चमक सकते हैं
कभी वह लिखता है : गुड्डो, यह धरती चाहे जितना जोर लगा ले
सूर्य के दबदबे से बिल्कुल न निकल पाएगी
वह दुश्मन शमशेर मेरी बेटी को जाने
कैसी शिक्षा दिलाना चाहता है
उसके ख़तों में बंदर के आदमी बनने की
आदमी के शिकारी बनने की व्यथा होती है
भला उस न जन्मी मासूम ने
क्या चीन की दीवार गिरानी है
या मिस्र के पिरामिडों की ममियों के
आभूषण उतारने हैं?
मुझे तो जान पड़ता है— यह आदमी कोई बदमाश है
जो मार्को पोलो के घर की तरह
मुझ परदेशी का छिटपुट हड़प लेना चाहता है
शमशेर इसे कुछ कहो यारो
बासी, बिल्ले और लखबीर[4] आपका फर्ज़ नहीं क्या?
इस आदमी से कहो
ऐसे ख़त मेरी बेटी को न लिखे
सँभाल रखे, बाद में पुस्तकाकार छपवा ले
इसका कुछ लाभ हो जाएगा—

काश, मैं जानता
अंबेदकर दवाइयोंवाला डॉक्टर नहीं था—
तो मैं परदेस की दवाई लाने से पहले
किसी धन्वंतरि के पास जाता
मेरी बिना जन्मी गुड्डो के नक्शों पर
इन बदशगन ख़तों की परछाईं न पड़ती
और परदेस टूटते तारे की लीक की तरह

हमारे दोने में मकई की जगह न उग आता
परदेस जी.टी. रोड पर उलट गए ट्रक की तरह
दोआबे के आमों पर बौर की तरह न उतर आता!

अब तो शमशेर, तुम्हारा पूर्णसिंह [5] वाला पंजाब
इस परदेस के भीतर सिर्फ़ एक अरदास है
लंबी झड़ी में रिसती कच्ची दीवार के
कुछ दिन बची रह सकने के लिए

यारो फ़िक्र करते रहना—
इस कंजर परदेस की मार
किसी दिन शंकर [3] के मेले के अखाड़े में न आ थूके
कहीं यह रत्तोवाल [3] से मुलाकात [3] की ओर न चल दे
इसका कुछ पता नहीं कब पासले [3] की रामलीला के
मंच पर चढ़कर रावण या राम का भेस धारण कर ले
यार तुम फ़िक्र करना
इस बार चालीस में से एक बचे
तो महल में न मारना
उसके काम आने का अच्छा मौका है
महासिंह बुर्जवाला 'गर भभकियाँ मारना चाहे
तो रोकना नहीं—
हो सकता है 'बंदा' फिर किसी दिन पहाड़ से उतर आए
कैथल [3] न सही
हर हाल सढ़ौरे [3] तो उसके दल के साथ मिलकर
हम वतन को लौट आएँगे
फिर मिलेंगे शुष्क सिरसा [2] के बिछुड़े हुए सभी
कोई पौंड [6] के धुएँ से
कोई रियाल [6] की रेत से
कोई डालर [6] की चुँधियाहट से
हम आएँगे कतारें बाँधकर
इस मोरों, हीरे हिरनों की धरती पर
यारो फ़िक्र करते रहना
यारो फ़िक्र करते रहना।

[1. पाश की स्मृति में पुस्तक से। कवि के कवि-पत्रकार मित्र शमशेर संधू को संबोधि
कविता, 2. नदी का नाम, 3. विभिन्न गाँवों-कस्बों के नाम, 4. पाश के कुछ दोस्त,
प्रसिद्ध पंजाबी कवि, 6. इंग्लैंड, अरब देशों व अमेरिका की मुद्राएँ।]

23 मार्च

उसकी शहादत के बाद बाकी लोग
किसी दृश्य की तरह बचे
ताज़ा मुँदी पलकें देश में सिमटती जा रही झाकी की
देश सारा बच रहा बाकी
उसके चले जाने के बाद
उसकी शहादत के बाद
अपने भीतर खुलती खिड़की में
लोगों की आवाज़ें जम गईं
उसकी शहादत के बाद
देश की सबसे बड़ी पार्टी के लोगों ने
अपने चेहरे से आँसू नहीं, नाक पोंछी
गला साफ कर बोलने की
बोलते ही जाने की मशक की
उससे संबंधित अपनी उस शहादत के बाद
लोगों के घरों में, उनके तकियों में छिपे हुए
कपड़े की महक की तरह बिखर गया
शहीद होने की घड़ी में वह अकेला था ईश्वर की तरह
लेकिन ईश्वर की तरह वह निस्तेज न था।

[डायरी, 23 मार्च 1982।]

बरसात

सबके सामने बरसा है बादल
उनके नाम—
जिनके पुए नहीं पके
जिन्होंने पींग नहीं झूली
गीली रोशनी गवाह है
नंगे पैरों की कविता कीचड़ में लिखी हुई
बेनाम कवियों द्वारा
जिन्हें महीने का नाम
सिर्फ़ खास मौसम की खारिश से याद आया
संगीत न गला, न डूबा
भीगे हुए आलम ने सरेआम सुने
वृक्षों से टपके निखरे हुए बोल
हवा में बिखरे शब्द
पथों पर बहते गीत
वे आते रहे
और मिट्टी में बलिदान होते
बहाते रहे अपना रक्त

वे बूँदें थीं
जिनकी लाशों पर चलकर
दरियाओं ने रवानी पकड़नी थी
दिशा ढूँढ़नी थी...
फिर घूरे के ढेरों की
बदबू घुल गई सारी
झोंपड़ियों से उबलते चावलों की महक आई
और फ़िज़ा में गूँज उठे
बरसात के गीत...

खेतों में धान बोए गए
और गाँव की ड्योढ़ी में ताश खेली गई।

['हेमज्योति' 1971 से।]

घास

मैं घास हूँ
मैं आपके हर किए-धरे पर उग आऊँगा

बम फेंक दो चाहे विश्वविद्यालय पर
बना दो होस्टल मलबे के ढेर
सुहागा फिरा दो भले ही हमारी झोंपड़ियों पर
मुझे क्या करोगे?
मैं तो घास हूँ, हर चीज़ ढक लूँगा
हर ढेर पर उग आऊँगा

बंगे [1] को ढेर कर दो
संगरूर [1] को मिटा डालो
धूल में मिला दो लुधियाना [1] का जिला
मेरी हरियाली अपना काम करेगी...
दो साल, दस साल बाद
सवारियाँ फिर किसी कंडक्टर से पूछेंगी—
''यह कौन सी जगह है?
मुझे बरनाला [1] उतार देना
जहाँ हरे घास का जंगल है।''

मैं घास हूँ, मैं अपना काम करूँगा
मैं आपके हर किए-धरे पर उग आऊँगा।

[1. पंजाब के विभिन्न कस्बों के नाम।]

वफा

बरसों तड़पकर तुम्हारे लिए
मैं भूल गया हूँ कब से, अपनी आवाज़ की पहचान
भाषा जो मैने सीखी थी, मनुष्य-जैसा लगने के लिए
मैं उसके सारे अक्षर जोड़कर भी
मुश्किल से तुम्हारा नाम ही बन सका
मेरे लिए वर्ण अपनी ध्वनि खो बैठे हैं बहुत देर से
मैं अब लिखता नहीं— तुम्हारे धूपिया अंगों की सिर्फ़
परछाईं पकड़ता हूँ
कभी तुमने देखा है— लक़ीरों को बगावत करते?
कोई भी अक्षर मेरे हाथों से
तुम्हारी तसवीर बनकर ही निकलता है
तुम मुझे हासिल हो (लेकिन) कदम-भर की दूरी से
शायद यह कदम मेरी उम्र से ही नहीं
मेरे कई जनमों से भी बड़ा है—
यह कदम फैलते हुए लगातार
रोक लेगा मेरी पूरी धरती को
यह कदम माप लेगा मृत आकाशों को
तुम देश में ही रहना
मैं कभी लौटूँगा विजेता की तरह तुम्हारे आँगन में
इस कदम या मुझे
ज़रूर दोनों में किसी को क़त्ल होना होगा।

हसरत

ज़िंदगी!
तुम मुझे इस तरह बहलाने की कोशिश न करो—
यह वर्षों के खिलौने
बहुत नाज़ुक हैं
जिसे भी हाथ लगाऊँ
टुकड़ों में बिखर जाता है
अब इन मुँह चिढ़ाते टुकड़ों को
मैं उम्र किस तरह कह दूँ
सखी, कोई तो टुकड़ा
समय के पाँव में चुभकर
फर्श को लाल कर दे।

सच

मैंने यह कभी नहीं चाहा
कि विविध भारती की ताल पर हवा लहरती हो
और रेशमी पर्दों को
मुझसे छिप-छिप छेड़ती हो

मैंने यह कभी नहीं चाहा
शीशों से छनकर आती
रंगदार रोशनी मेरे गीतों के होंठ चूमे

मैंने तो जब भी कोई सपना लिया है
रोते शहर को सांत्वना देते ख़ुद को देखा है
और देखा है शहर को गाँव से गुणा होते
मैंने देखे हैं मेहनतकशों के जुड़े हुए हाथ
घूँसों में बदलते...
मैंने कभी कार के गद्दों की हसरत नहीं की
मेरे सपने कभी
बीड़ी के कश की लालसा करते रिक्शेवाले
किसी दुकान के बोर्ड पर लगी सेज की
सीमा पार नहीं गए
मैं कैसे चाह सकता हूँ
विविध भारती की ताल पर हवा लहरती हो
मैं देखता हूँ लू से झुलसे हुए चारे के पट्ठे
मैं कैसे कल्पना में लाऊँ नशीले नयन
मैं देखता हूँ आसमान की ओर उठी
वर्षा माँगती बुझी हुई आँखें।

ज़िंदगी/मौत

जीने का एक और भी ढंग होता है
भरी ट्रैफिक में चौपाल लेट जाना
और स्लिप कर देना
वक़्त का बोझिल पहिया

मरने का एक और भी ढंग होता है

मौत के चेहरे से उलट देना नकाब
और ज़िंदगी की चार सौ बीस को
सरेआम बेपर्द कर देना।

सलाम

मैं सलाम करता हूँ
आदमी के मेहनत में लगे रहने को
मैं सलाम करता हूँ
आनेवाले खुशग़वार मौसमों को
मुसीबतों से पाले गए प्यार जब सफल होंगे
बीते वक़्तों का बहा हुआ लहू
ज़िंदगी की धरती से उठाकर
मस्तकों पर लगाया जाएगा।

हद के बाद

बारह साल तो हद होती है
हमने कुत्ते की पूँछ को चौबीस साल 'बाँसुरी' में रखा है
लाठी टेक कर चलनेवाले
जिन अपाहिज लोगों के माथों पर
माऊंटबेटन ने 'आज़ादी' का शब्द लिख दिया था
हम वे माथे
उन्हीं की लाठियों से मिटा देंगे
हम इस पूँछ को बाँसुरी सहित

इस आग में झोंक देंगे
जो आज देश के पचास करोड़
लोगों के दिलों में सुलग रही है
पूँछ जो ख़ुद तो सीधी न हो सकी
इसने बाँसुरी को बजने लायक़ कहाँ रहने दिया होगा?

पैर

मैं जानता हूँ
मुहब्बतों के ये सफ़र
कभी पैरों के साथ नहीं होते
मैं भी कितना बेलिहाज़ हूँ, दोस्तो
मैंने अपनी मुहब्बत को
पैरों पर चलना सिखाया है

मैंने अपने पैरों को
कँटीली झाड़ियों के स्कूल में
पढ़ने भेजा है

मिट्टी में मिट्टी बन चुके
पिछले वक़्तों के मुसाफिर
हमारे पैरों को सांत्वना देते हैं
हमें पैरों का अर्थ बताते हैं
कोल्हू के चक्कर में, पैरों का कोई अर्थ नहीं
पैरों का सीधा-सा अर्थ—
ठंड होता है
छड़ होता है
जब पैर काट दिए जाते हैं
तो बाग़ी सिर के बल सफ़र करते हैं

जब हुकूमत माँगे हुए पैरों के बल चलती है
तो सफ़र को कलंक लगता है
जब सिर से पैरों का काम लेकर
सफ़र के नाम से कलंक धोया जाता है
तो शासक के पैरा थर्रा उठते हैं
जब पैरों की जुंबिश से
राग छिड़ता है...
तो बेड़ी लगानेवालों के पैर सुन्न हो जाते हैं

पैरों में सैंडल हों या जूते
पैर तो माप के होते हैं
माँस खिलाने के लिए नहीं
जूतों में माँसखोरों के लिए
अक्ल की पुड़िया बंद होती है।

कुछ सच्चाइयाँ

1.

आदमी के ख़त्म होने का फैसला
वक़्त नहीं करता
हालात नहीं करते
वह ख़ुद करता है
हमला और बचाव
दोनों आदमी ख़ुद करता है।

2.

प्यार आदमी को दुनिया में
विचरने लायक बनाता है या नहीं
इतना ज़रूर है कि
हम प्यार के बहाने (सहारे)
दुनिया में विचर ही लेते हैं।

3.

मुक्ति का जब कोई रास्ता न मिला
मैं लिखने बैठ गया हूँ
मैं लिखना चाहता हूँ वृक्ष
जानते हुए
कि लिखना वृक्ष हो गया
मैं लिखना चाहता हूँ पानी
'आदमी'–'आदमी' मैं लिखना चाहता हूँ
किसी बच्चे का हाथ
किसी गोरी का मुख
मैं पूरे ज़ोर से
शब्दों को फेंकना चाहता हूँ आदमी की ओर
यह जानते हुए भी कि आदमी को कुछ न होगा
हमें ऐसे रखवालों की ज़रूरत नहीं
जो हम पर अपने महलों से हुकूमत करें
हम मेहनतकशों को उनके दान की ज़रूरत नहीं
हम आपस में ही सब फैसले करेंगे।

4.

आ गए मेरे बीत चुके पलों की गवाही देनेवाले
आ गए क़ब्रों में से सोए हुए पलों को जगानेवाले

28.12.1971

5.

उनकी आदत है सागर से मोती चुग लाने की
उनका रोज़ का काम है, सितारों का दिल पढ़ना

28.12.1971

6.

मेरे पास चेहरा
संबोधक कोई नहीं
धरती का पागल इश्क शायद मेरा है
और तभी जान पड़ता है
मैं हर चीज़ पर हवा की तरह सरसराता हुआ गुजर जाऊँगा
सज्जनो, मेरे चले जाने के बाद भी
मेरी चिंता की बाँह पकड़े रहना।

7.

हज़ारों लोग हैं
जिनके पास रोटी है
चाँदनी रातें हैं, लड़कियाँ हैं
और 'अक्ल' है
हज़ारों लोग हैं, जिनकी जेब में
हर वक़्त कलम रहती है
और हम हैं
कि कविता लिखते हैं...

[डायरी के पृष्ठों से।]

चिनग चाहिए

कल्पना की है जब हुस्न की
इसकी मुक्ति का भी
मैंने ध्यान किया है
जोश को हुंकारी मिली
अमल को मिल गई चिनग

हुस्न जब भी आँखों में उलटा लटका है
रोटी की तरह आया इसका ख़याल
सिकुड़ा विस्तार मन का
और यह बंदा खोल में क़ैद हुआ
हर कोई ही इस पल
बाहर से टूटता है
बादल रहे चौगिर्दे से अनछुआ बनकर रह जाता है
खोल में ठंड से जम जाता है
खोलों में घुसना—
स्वयं में केन्द्रित हो जाना
मारक हमला नशे का झेलकर
सरगर्मी से टूट जाना।

[एक फटी हुई डायरीनुमा कापी से।]

उम्मीद रखते हैं...

मुड़-मुड़ जाती है— आलम की स्याह चादर
जब आँगन में मुर्गे की बाँग छनक उठती है

गीत घोसलों से निकलकर बाहर आते हैं
और हवा में उकेर देते हैं
शहीदों के अमिट चेहरे, मिट्टी का सबसे सुहावना सफ़र

रोशनी की पहली किरन के साथ
फैलती हैं इस कद्र तस्वीरें
कि देशभक्त यादगार हॉल की मजबूत चारदीवारी पर
बेपरवाह हँसता है तस्वीरों का आकार

आप जब भी किसी को नमस्कार करते हैं
या हाथ मिलाते हैं
उनके होंठों से तिड़की हुई मुस्कुराहट
आपकी परिक्रमा करती है
आप जब किताबें पढ़ते हैं
तो अक्षरों पर फैल जाते हैं
उनके अमल और शिक्षाएँ

जब समाज के रूखे सीने पर
होता है तलवारों का नृत्य
जब गर्म लहू बकरे बुलाते हैं
या जब पेट की गड़गड़ाहट नारा बनती है
तो कभी रोते, कभी मुस्कराते हैं— सलीब के गीत
तुम्हारे पास हल का फाल है या खराद की हत्थी
तुम्हारे पैरों में सुबह है या शाम
तुम्हारे अंग-संग तुम्हारे शहीद
आपसे कुछ उम्मीद रखते हैं।

[एक फटी पुरानी कापी से।]

मेरी बुलबुल

समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल
बागों से बाहर आ
और सड़कों पर भटकती आत्माओं की ओर देखकर
भौंकना या रोना शुरू कर दे
अब तुम्हारे गीत को सुनकर
कोई भी बीमार अच्छा न होगा
आखिर यही था न गीत
जो वृक्षों की टहनियों पर ओस की तरह जम गया
और सूर्य के मामूली-से टुकड़े से सहमकर
भाप बनकर उड़ गया

समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल—
इसने घड़ी की सुइयों को काट खाया है
दीवारों को दाँत मारे हैं और गमलों पर पेशाब किया है
यह पता नहीं और क्या करता, यदि सरकार के बंदे इसे पटा डालकर
बंगलों के फाटकों पर न बाँधते
मेरी बुलबुल अपने काम अब कुछ और तरह के हैं
अब हम जीने जैसी हर शर्त को हार चुके हैं
मैं अब आदमी की बजाय घोड़ा बनना चाहता हूँ
इन इंसानी हड्डियों पर तो काठी बहुत चुभती है
मेरी बराछों में लगाम पीड़ा पहुँचाती है
मेरे इंसानी पैर ग़ज़ल के पिंगल जैसी टाप नहीं करते
समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल...
....
....

[अधूरे अंश।]

भाप और धुआँ

अंगों और रंगों में
अपनी लघुता के एहसास जितना .फ़र्क है
जो भी शापित किरन
मेरे साथ टकराकर गुज़रती है
मेरी आवाज़ से बे.ख़बर
हर सुलगती किरन
भटक जाती है समय की पीढ़ियों में
और वसीयत बनकर
हर शापित किरन
बेमौसम ऋतु में मारी जाती है
सूर्य तो कल फिर उगेगा
मुझसे फिर मरने के लिए
.ख़ुद को बचाया न जाएगा

मुझे अपने शब्द
पिरोकर रखने पड़ते हैं
एक .क़तार में—
क्योंकि हर सीमा के
उस पार
दुश्मन खड़े हैं
मेरी छाया के गर्भ में
नाजाय.ज़ संबंध पलते हैं
(हर किसी किरन से पहले मैं .ख़ुद को बनवास कह सकता हूँ)
और हर रोज़ जान-बूझकर
अभ्यस्त अंगों की सूली पर चढ़कर
कल के लिए तौबा की .ज़मीन तैयार करता हूँ

तुमने तो सिगरेट पीकर

हाथों से मसल दी—
पैरों तले कुचले बिना
उसके अंगार
बस्ती को जला भी सकते हैं
मेरी छाती पर के
तेरे नाखूनों के चिह्न
ज़ख़्म के सिवा
काश! कुछ और भी
कहलवा सकने के क़ाबिल होते

कोई क्या फ़र्क करे
भाप और
धुएँ में।

बहार व बंदे

बहार की ऋतु में
कोई भी चाहता है
फूल सिर्फ़ फूल
या सुगंधित पत्ते बरगला जाते हैं

आओ हम गुमराह हुए लोग
सूखे सरकंडे के कुप्पों से
और जले हुए चूड़ी-सलोज [1] की राख से
बेशर्म-सा गीत ढूँढ़ें

जब हमारे गीत, पूरी जहालत से
फूलों से आँख मिलाएँगे
तो बहार का अभिमानी सौंदर्य
क्या भंग न होगा?

लेकिन अभी तो बहार क़ातिल है
सभी चाहते हैं
फूल सिर्फ़ फूल
....
....

[1. एक पौधे का नाम।]

कुजात

तुम आदमी की जाति नहीं
कुजात थे
जिसे पहली बार दुनिया पर
किसी जासूस की ज़रूरत पड़ी
तुम जिसने पहली बार
महाबलि इंसान का शिकार करने का सोचा
तुम्हारे भीतर कभी उषा ने न गाया होगा
तुम बहुत लंबी काली अँधेरी रात के पहले की शाम थी
तुम धुँधुआते आसमान को कंधों पर ढोकर
फेंक गए हो बीजों के भीतर सो रही हरियाली पर
दुनिया भर के शहीदों की झेली हुई पीड़ा से
मुश्किल से आधी अधूरी मापी गई है
तुम्हारी कुरूप लाश
तुम्हारी लाश की गंदगी, बदी के खिलाफ़ उठते हर हथियार
का दस्ता हो तुम
जिसे पहली बार किसी जासूस की ज़रूरत पड़ी
..

[फटे-पुराने कागज़ से मिली एक अधूरी कविता।]

संसद

ज़हरीली शहद की मक्खी की ओर उँगली न करें
जिसे आप छत्ता समझते हैं
वहाँ जनता के प्रतिनिधि बसते हैं

उम्र

आदमी का भी कोई जीना है
अपनी उम्र कव्वे या साँप को बख़्शीश में दे दो

फ़तवेबाजी

दोस्तो यदि भिनभिनाहट तंग करती हो
नाक से मक्खियाँ
तो उड़ा लेना
लेकिन सफाई का नाम देकर
पवित्र शब्द की मिट्टी पलीद न करना

['संसद', उम्र और फतवेबाजी कविताएँ एक कागज़ पर लिखी मिलीं।]

घास जैसे आदमी की दास्तान

ऊँट चराता तुम्हारा श्रवण वीर [1]
ऊँटों ने चर लिया है बहिन
वह अब तुम्हें कभी मिलने न आएगा
दिल तो बहुत चाहता था
सास से छिपाकर रखा घी
आकर निकलवाऊँ
या शुष्क चीनी की कटोरी
उसके माथे पर दे मारूँ
लेकिन नामुराद ऊँटों का अजीब किस्सा है
न ये ख़ुद नज़र आते हैं
न इनकी धूल उड़ती दिखाई देती है
बस मसूढ़ों के चरने की आवाज़ आती है
जब वे चरवाहे के गीतों का ह्रास कर रहे होते हैं

मेरे तो दिल में था
कि ऊँटों के लिए मेरी आँखों में
फैली हरियाली ही बहुत है
लेकिन जब उन्होंने मेरे हाथ खा लिए
तुम्हारे ज्योति-रहित अंग और पिता
मेरे बहँगी न उठा सकने के बारे में
कुछ भी न समझ पाए
और अब तुम्हारा ऐसा ही चाव
गाँव की सीमा पर पेड़ पर टँगा है
किसी बिना इस्तेमाल किए कफ़न की तरह
बिफरे हुए ऊँट, बहिन
मुश्किलों से बचाए खेतों को
लताड़ रहे हैं।

[1. भाई।]

तुम्हारे रुक-रुक जाते पाँवों की सौगंध बापू
तुम्हें खाने को आते रातों के जाड़े का हिसाब
मै लेकर दूँगा
तुम मेरी फ़ीस की चिंता न करना
मैं अब कौटल्या के शास्त्र लिखने के लिए
विद्यालय नहीं जाया करूँगा
मैं अब मार्शल और स्मिथ से
बहिन बिंदरो की शादी की चिंता की तरह
बढ़ती कीमतों का हिसाब पूछने नहीं जाऊँगा
बापू तुम यों ही हड्डियों में चिंता न जमाओ

मैं आज पटवारी के पैमाने से नहीं
पूरी उम्र भत्ता ले जाती रही माँ के पैरों की बिवाइयों से
अपने खेत मापूँगा
मैं आज संदूक के खाली ही रहे खाने की
भाँय-भाँय से तुम्हारा आज तक दिया लगान गिनूँगा

तुम्हारे रुक-रुक जाते पाँवों की सौगंध बापू
मैं आज श्मशान भूमि में जाकर
अपने दादा और दादा के दादा के साथ गुफ़्तगू कर जान लूँगा
यह सब कुछ किस तरह हुआ
कि जब दुकानों जमा दुकानों का जोड़ मंडी बन गया
यह सब कुछ किस तरह हुआ
कि मंडी जमा तहसील का जोड़ शहर बन गया
मैं रहस्य जानूँगा
मंडी और तहसील बाँझ मैदानों में
कैसे उग आया था थाने का पेड़
बापू तुम मेरी फ़ीस की चिंता न करना
मैं कालेज के क्लर्कों के सामने
अब रीं-रीं न करूँगा
मैं लेक्चर कम होने की सफाई देने के लिए
अब कभी बेबे या बिंदरो को

झूठा बुखार न चढ़ाया करूँगा
मैं झूठमूठ तुम्हें वृक्ष काटते को गिराकर
तुम्हारी टाँग टूटने जैसे कोई बदशगन-सा बहाना न करूँगा
मैं अब अंबेदकर के फंडामेंटल राइट्स
सचमुच के न समझूँगा
मैं तुम्हारे पीले चेहरे पर
किसी बेज़मीर टाउट की मुस्कुराहट जैसे सफ़ेद केशों को
शोकमयी नज़रों से न देखूँगा
कभी भी उस संजय गाँधी को पकड़कर
मैं तुम्हारे कदमों में पटक दूँगा
मैं उसकी ऊटपटाँग बड़कों को
तुम्हारे ईश्वर को निकाली गाली के सामने पटक दूँगा
बापू तुम ग़म न करना
मैं उस नौजवान हिप्पी को तुम्हारे सामने पूछूँगा
मेरे बचपन से अगली उम्र का क्रम
द्वापर-युद्ध की तरह आगे-पीछे किस बदमाश ने किया है
मैं उन्हें बताऊँगा
निःसत्व फतवों से चीज़ों को पुराना करते जाना
और बेगाने बेटों की माँओं के उल्टे-सीधे नाम रखने
सिर्फ़ लोरी के संगीत में ही सुरक्षित होता है
मैं उससे कहूँगा
ममता की लोरी से ज़रा बाहर तो निकलो
तुम्हें पता चले
बाकी का पूरा देश बूढ़ा नहीं है...

●●●

पत्नी और बस एक बच्चा
और कुछ भी नहीं था पीछे छोड़ने के लिए
उसके पास
क़ब्र का एक पत्थर भी नहीं

अपने पीछे मरनेवाली जो छोड़ गई

एक मुरझाया फूल था और एक बच्चा
और कुछ भी न बचा पीछे
एक पोशाक तक नहीं उसके बाद

मरनेवाला जो बच्चा छोड़ गया पीछे अपने
टाँग एक मुड़ी हुई
और शुष्क आँसू
और पीछे कुछ न बचा
याद भी नहीं

मरनेवाला सिपाही जो छोड़ गया पीछे
एक टूटी हुई बंदूक
और एक बेईमान दुनिया
और उनके पास कुछ भी तो नहीं
छोड़ जाने को पीछे अपने

मरनेवाले छोड़ गए जो अपनी पीछे
एक मुझे जीते हुए
एक तुम्हें जीते हुए
और कुछ न बचा लेकिन
और कुछ भी न बचा लेकिन।

[पाश की स्मृति में पुस्तक से।]

●●●

मैंने धैर्यपूर्ण दुस्साहस से
जो अद्वितीय कँपकँपी
तुम्हारे पक रहे अंगों के भीतर बोई थी
वह लाख ओटों के बावजूद
धड़ाधड़ बढ़ रहे पत्तों के अंधे ढेर के नीचे
उग रही होगी

तुम अपने पति को जिस नाम से याद करती हो

जानती हो? यह मेरी ही सिखाई प्रतीक्षा है
जिस शिशु का तुम इतना ध्यान रखती हो
उसका पता
तुम्हारी छाती के भीतर मैंने अपने पोरों से
लिखा था
तुम्हारा कोई भी मेक-अप
(तुम्हारे) चेहरे से मेरी दस्तक की झुनझुनाहट
को कैसे दबा पाएगा?
तुमने उसमें साँस लिए हैं
जो हवा मेरी दस्तक की टंकार से भरी हुई थी
तुम्हारा जिस्म कब, कहाँ और किसके पास खुला था—
अपने पूरे खुले दरवाज़ों के साथ
यह सवाल ही तब उठना था—
अपनी सभी आदतों, सोच
और उनके स्तर के साथ अपनी गर्वीली कुँआरी जान
सबसे पहले 'गर मेरी गोद में न रही होती
अलफ नंगी
तुम्हारा नंगेज़ तब से बहुत दूर-दूर तक
घूमा-फिरा है लेकिन
तुम्हारे कपड़ों की निचली डोरी का पहला सिरा
हमेशा ही बँधा रहा है
मेरी कलाई-घड़ी के साथ...

[पाश की स्मृति में पुस्तक से।]

●●●

जितना शक्तिवर और जैसा भी हो
मेरा तुम्हारे ईश्वर के बग़ैर ही गुज़ारा है
उस आराधना के बग़ैर
जो अच्छे-भले आदमी को
चरणों की धूल में बदल दे
उस शुक्राने के बग़ैर

जिसकी कोई वजह नहीं होती
उस ओट के बग़ैर
जो हमेशा ही ओट-रहित रखती है।

●●●

तुम ऐसे क्यों नहीं बन जातीं
जैसे ज़बान से गाए गीत होते हैं
हर बार तुम्हें तख्ती की तरह क्यों लिखना पड़ता है
मुँहज़ोर संध्याओं के शोर में से
तुम्हारे बोलों को निथार सकना बहुत मुश्किल है
तुम्हारे शंख की घंटी की तरह लहरों में
टूटती आवाज़ के समान मैं चाहता हूँ
तुम अस्त होते सूर्य का दुःख बँटाओ
और ईश्वर के नाम की तरह मेरी रूह में तैरती रहो
देखो मुझे सितारों का सामना करना है
जैसे पराजित होने पर कोई गर्वीला
शत्रु की आँखों में झाँकता है
छोटी-छोटी लौ में
गुम हुई तानों की तरह
मुझे टोह-टोहकर ख़ुद को तलाश करना है।

●●●

तुम ऐसे ही क्यों ख़त्म हो रही हो, माँ
तुम ग़म न लगाया करो
मैंने अपने दोस्तों से बोलना छोड़ दिया है
जानती हो? वे झूठ कहते थे—

अब तुम्हारा घर लौटना मुश्किल बहुत है
वे कहते हैं माँ
तुम मुझे अब वहाँ बिल्कुल न जाने देना

बबलू को भी हम नहीं जाने देंगे
वे वही लोग हैं, जिन्होंने मुझसे बड़े को
तुमसे अलग कर दिया था
अपने उस आशीष चैटर्जी को
मूँछों से पकड़कर मैं
तुम्हारे कदमों में पटक दूँगा
तुम उससे मुझसे बड़े की लाश माँगना
वे भाई की हड्डियों को जादू का डंडा बनाकर
नए लड़कों के सिर पर घुमाते हैं

तुम रोती क्यों हो, माँ
मैं बड़ी बहन को भी उस रास्ते से लौटा लाऊँगा
और फिर हम सभी बहन-भाई
इकट्ठे होकर पहले की तरह ठहाके लगाया
करेंगे
बचपन के उन दिनों की तरह
जब तुम्हारी आँखों पर चुनरी बाँधकर
हम चारपाइयों के नीचे छुप जाते थे
और तुम हाथ बढ़ाकर टटोलती
हमें ढूँढ़ा करती थी
या बिल्कुल वैसे ही जब मैं पीठ पर
चिकोटी काटकर दौड़ जाता था
और तुम गुस्से में मेरे पीछे
बेलन चलाकर फेंकती थी

मैं टूटे बेलन को दिखा-दिखाकर
तुम्हें बहुत सताता था

भाई की याद तुम्हें बहुत सताती है न, माँ
वह बहुत भला था? याद है एक बार
वह शीशम छीलता गिर गया था
बाजू टूट जाने पर भी हँसता रहा था
ताकि सदमे से तुम बेहोश न हो जाओ
और बहन तब कितनी छोटी थी

बिल्कुल गुड़िया-सी

अब वह शहर जाकर क्या-क्या सीख गई है
लेकिन तुम ग़म न लगाया करो, माँ
हम उसके हाथ पीले कर देंगे
फिर मैं और बबलू
उसी तरह तुम्हारी गोद में लेटकर
परी-कहानियाँ सुना करेंगे
मामा के नशे में फूंके
लाखों रुपए का इतिहास सुना करेंगे
और ज़िक्र छेड़ा करेंगे...

माँ, हम कहीं दूर चले जाएँगे
जहाँ सिर्फ़ पंछी रहते हैं
वहाँ आसमान सिर्फ़ कनात जितना नहीं
जहाँ वृक्ष लोगों जैसे हैं
माँ, तुम ग़म न करो
हम एक बार फिर उन्हीं दिनों की ओर लौटेंगे
जहाँ शहर का रास्ता
एक बहुत बड़े जंगल से गुज़र कर जाता है।

●●●

वे रिश्ते दूसरे होते हैं
जिनमें भटक जाते हैं दूधिया सफ़ेद दिन
और मक्खन जैसी कोमल रातें
जिनमें हरी घास लेटने के लिए होती है
या बमों से झुलसने के लिए
जिनमें इंसान राजा होता है या पशु
आदमी कभी नहीं होता

वे रिश्ते होते हैं : पत्थर पर खरोंची हुई
चेहरे की पहचान

पेट की कुंडी में फँसी हुई जंग खाई जंजीरें
छाती पर गीधों की तरह झपटते अरमान
टूटे हुए हल की तरह सिर्फ जलाने के काम
आते हैं वे रिश्ते

वे रिश्ते
जिनमें कोई भीड़ क्रंदन करती दलदल लगती है
जिनमें शरारत करते बच्चे नरक का दृश्य दिखते हैं
जिनमें चढ़ती जवानी शासन के लिए भी
आफ़त होती है
हुकूमत के लिए भी और मां-बाप के लिए भी
जिनमें घुटनों के ऊपर
गरदन के नीचे ही हो जाता है औरत का
जिस्म मुकम्मिल
वे रिश्ते जीने लायक इस पवित्र धरती पर
मरखने सांडों की उड़ाई धूल होते हैं
वे रिश्ते और होते हैं

वे रिश्ते और होते हैं
जो जिये जाते हैं, कभी समझे नहीं जाते
ये रिश्ते सिसकते हैं, घास की गठरी रगेदने के लिए
आड़ में खरगोश की तरह छिपे घसियारों पर
टोकाटोकी करते उस रुआंसे जाट के बीच
जिसका बार-बार रुक जाता है घास का मुट्ठा

ये रिश्ते चीख़ते हैं
मंडियों में गेहूँ फेंकने आए
अपना मुँह लिए बैठे उन किसानों में
जो साथ वाले से यह नहीं पूछते कि
वह मल्लियाँ से आया है या तलवंडी से
लेकिन उनके बीच की उदास चुप्पी पूछती है
पुड़ियों में बिकती रसद किस तरह डकार जाती है
बादलों को छूती बखार।

●●●

जीने में व्यस्त लोग कब किसी को वक़्त देते हैं
कायर जन को क़त्ल का मौका भी मुश्किल से ही मिलता है।

●●●

जिस दिन तुमने पिरथी को जन्म दिया
वह कौन-सा दिन था माँ?
ईश्वर बनकर सभी कैलेंडरों में
मैं वही दिन कर दूँगा

जिस रात को वे तुम्हारा पिरथी ले गए
जिस जगह पर उसे यातनाएँ दीं
उस दिन धरती सुहागिन बन गई
सूनापन टहक उठा

कहाँ वह बूढ़ी चगल[1]
जिसकी गुंडा बाँह
कहाँ तुम्हारा कुल
नौ ही बरस का लाल[2]
पिरथी तो धरती आकाश
सभी तुम्हारे नाम कर गया
बेअंते[3] *जैसे*
पैर रखने की जगह तलाश रहे हैं
तुम्हारा कोई क्या कर लेगा
तुम शेर बेटों की माँ हो
तुम्हारा कोई क्या कर लेगा—

[1. लोकप्रिय छात्र नेता पृथीपालसिंह रंधावा की हत्या पर। 1. नीच 2. पृथीपाल रंधावा के नौ बरस छात्र नेता रहने की ओर संकेत 3. पृथीपाल रंधावा का हत्यारा, जिसकी बाद में हत्या हुई।]

●●●

नहीं, मैं अब यह देखने के लिए
जीवित नहीं हूँ
कि आप मुझे कैसे मारेंगे
कौन गिने कि
यातना की किस-किस अदा पर
आपने मेरा नाम लिखा है?

नहीं, मैं अब यह देखने के लिए जीवित नहीं हूँ
कि उसके गाँव में किस शान से संध्या ढलती है
न मुझे यह पता है
कि पूरे चाँद की रात कैसे कटती होगी।

●●●

चाँद भी अकेला है मेरी तरह
और उन सभी गुनाहग़ार लोगों की तरह
जिन्होंने अनुकूल स्थितियाँ न होने पर भी
जीने का दुस्साहस किया
शायद चाँद को पड़ोस की अनुपस्थिति अखरती नहीं
योगी साधुओं की तरह जो होने का महत्त्व खो देते हैं
हमारे नज़दीक बसे एकाकीपन जी रहे लोगों से
अपने स्वभाव की साजिश से
कहीं ऐसा तो नहीं चाँद ने भी सीख लिया हो?
पेड़ जब खुसर-पुसर नहीं करते
और चुप खड़े रहते हैं भारतीय नागरिक की तरह
खामोशी में बुझी हुई घरों की तार पर
मौसम फिसल जाते हैं जब
हरियाणा के विधायकों की तरह
गुरुद्वारे का स्पीकर जब गुरुवाणी की जगह
शोर उगलता है
हमारे खिला.फ ही जाता है
तो मुझे लगता है हमारे लिए

बनाई गई हमारी यह दुनिया
हमारे ही खिलाफ़ गवाही दे रही है।

●●●

मेरे गहरे भीतर कहीं बादल गरजते हैं
मैं डरता हूँ उस तूफान में
घोंसलों में मासूमियत सहित
तुम भी कहीं न भटक जाओ
मेरी दुनिया के लोग अभी इतने जंगली हैं
बिजलियों का मंत्र नहीं जानते।

●●●

बीते बरसों को पुकारते बोल
जैसे वातावरण में बुढ़ापा हुंकारी दे रहा हो
मुझे उनसे नफ़रत है
मेरे भीतर मौसमों की जो ऊँघ है
उनमें त्योहारों का चाव महकता है
मेरे अंग-संग से स्वागत चहकता है
बच्चों की भरी-पूरी वर्तमान खुशी के लिए
जो भूत और भविष्य से स्वतंत्र है
चक्की पर बोलते घुग्गू के लिए
पाटों से किर रहे स्निग्ध आटे के लिए।

●●●

आओ देखो मेरे गाँव का सवेरा
चलती ख़राश में पिसता सुबह का अँधेरा
आओ महसूस करो, पथ पर चलता रोशनी का घेरा।
शब्द एक-एक कर जीवन से निकलते जा रहे हैं

और अपनी जगह खामोशी की नमोशी छोड़ जाते हैं।

●●●

जानवरों की तरह
उसने नील के किनारे लड़ाई की
जंगल में पाले हुए जानवरों की तरह
नासमझी की नदी
उसके सिर में बहती है
कई बार वह नील के ऐतिहासिक पानी में
महरू की तरह खिल जाता
बदन से बारूद की बू धुल जाती
लेकिन उसके बदन पर
मिस्र के मैदानों में फड़फड़ाती मौत की जो गमक
चिपट जाती थी
कभी न धुल पाती
मैल की बत्तियाँ उतारते हुए या सिर से जुएँ खुजलाते
उसके सिर में बहती रहीं नासमझी की नदियाँ
और दुनिया के अनेक लोगों की तरह वह।

●●●

अब वह उड़ता नहीं— सिर्फ़ भाग रहा है
—सिर्फ़ चल रहा है
—रेंग रहा है
(मैं भी) वैसे ही हूँ
पीठ पर बस्ता उठाए
हाथ में लैंप की सिगरेट
पैरों में बाट पकड़े हुए
मैंने नफ़रत करनी सीखी थी।

●●●

लोग कहें मैं मर गया— पूर्णसिंह

किसी की मेहर का छलकता प्याला जब तक आपके हाथों में है
आप जी सकते ही नहीं
छलकते हुए प्याले को पकड़े लीचड़[1] हाथ
कुछ तोड़ने का ढंग भूल चुके होते हैं
किसी भिखारी के हाथों से आप जीने की इबारत नहीं लिख सकते
किसी की मेहर का छलकता प्याला
जब हाथ से तड़ाक-से गिरता है
आप जीना शुरू करते हैं।

[1. लिजलिजा और नीच का मिला-जुला भाव।]

●●●

दुनिया में बिखरे छिटपुट को सँभालता
घरेलू आदमी हाँफ रहा है
घरेलू आदमी छिटपुट में बिखरे घर को
समेटता सँभलता मर जाता है
घरेलू आदमी की ओट में पूरा देश छिप जाता है
घरेलू आदमी सिर्फ़ घर के भीतर ही आदमी होता है
घरेलू आदमी धूप में छिपे पारदर्शी पंछियों का
शिकार करना चाहता है।

●●●

काम जो आदमी की नसों में
जीने की कँपकँपी बनकर बहता है
काम धरती के नीचे का बैल है
काम चमकता हुआ आकाश है
काम शमशान भूमि के आस-पास
ज़रखेज मिट्टी को क़ब्रों से अलग करता है।

●●●

कौन है
जो दूध, गेहूँ और कविता तक को
हमारे खिलाफ़ हमेशा कर देता है
कौन हमारे हाथों को—

●●●

नहीं
मैं भारत की खोज में निकला कोई कोलंबस नहीं हूँ
भारत तो सुना है एक देश होता है
और अमेरिका सुना है राज्यों का समूह होता है
किसी रानी का लंबा सुंदर हाथ
लेकिन शमशेर सफर का गाया जाना
आदमी मुबारक है।
... ...
महकती चरागाहों की चमक होती है।

[संभवत : 'यारों से संवाद' कविता अंश का प्रारंभिक रूप।]

●●●

मैं अपने ज़हर का हमउम्र भी खोज लूँगा
बूँदों से भीगी मिट्टी से
चूने को हो आए आसमानों से
और बहुत ही कम सोचनेवाली
बहुत गहरी हज़ारों स्तंभित आँखों से
कव्वे हमारे खेतों पर उड़ रहे हैं
फ़सल के बाद
फ़सल फिसलती जा रही है
धरती हर गाभिन गाय की तरह
बहुत माँगें नहीं रखती

बस चुपचाप
कभी उड़ते हुए कव्वों
और कभी मुरझाए हुए मनुष्यों की ओर
देखती ही जा रही है
जिनके पास पीड़ा के बारे में सोचने की फ़ुरसत
बहुत महँगी है
अभी मैं ज़हर की नुमायश करने के क़ाबिल नहीं हूँ
नहीं तो धूप से परेशान होकर
छोटी-छोटी परछाइयों के पीछे नहीं भागना था
नहीं तो इस तरह विनम्र होकर
ज़मीन में गड़े कागभगोड़ों के पास से
कौन गुज़रता है।

●●●

युद्ध हमारे लहू और हड्डियों से
शुष्क आँधी की तरह गुज़रेगा
सबकुछ पर अपना रंग छोड़ता
और बेसब्री से वर्षा के लिए तड़पाता हुआ
युद्ध की पीड़ा से
हमारी क़ौम के नक्श उघड़ आएँगे
युद्ध के ज़ख़्मों से हम खिले हुए फूलों को
महसूस करना सीखेंगे
हमें तीव्र चुंबन लेने की जाँच आएगी
हम आकाश की स्वच्छता से
अपना अंतस् भर लेंगे

तब एक नया युद्ध शुरू होगा
खुशगवार मौसमों के लिए
जब कष्टों से पाले गए प्यार फलेंगे
ज़िंदगी की धरती से
भूतकाल का बहा हुआ लहू
उठाकर मस्तकों पर लगाया जाएगा।

[संभवत: 'युद्ध और शांति' कविता का हिस्सा, जो कवि ने प्रकाशित कविता में शामिल नहीं किया।]

●●●

आज के दिन
हम पूरा हिसाब साफ करना चाहेंगे
हम चाहेंगे
उन्हें बहुत कुछ याद दिलाना
याद— बहुत स्वादिष्ट लगे बच्चों के माँस की
कंजकों के मुश्किल से फूटते स्तनों की
हम उनकी फूँक से बुझ गई
हर चीज़ की याद दिलाना चाहेंगे
धर्मो फौजन[1] की हथेली पर के इंतज़ार के दीपक की
चरवाहे महिंद्र को मुँहज़बानी याद दोहों की
धान सींचते हुए साँप के काटने से मर गई
तारे की जवान पत्नी की नाखून पालिश की

आज के दिन
हम कई बरस पहले मेले में रूठे देबे को मनाएँगे
आज के दिन
हम भुट्टों की गठरी से बिगड़े मोहने लुहार को
दिल चीरकर दिखलाएँगे
आज के दिन
हम देखेंगे
कच्ची शराब के घड़े से टूटी हुई बिंदर की यारी
साँझे जख़्मों से कैसे मुँह चुराएगी
आज के दिन
हम पशुओं के कोठे में दबाए पेंचोंवाले
बरछे को मिल-जुलकर खोजेंगे।

['आज का दिन' कविता का अंतिम हिस्सा, जो पाश ने इसके प्रकाशित रूप में शामिल नहीं किया। 1. सैनिक की पत्नी।]

●●●

हममें से कितनों का संबंध जीवन से है
जबकि मैं दुख चुका हूँ अपनी आँखों से
जबकि मैं सुन चुका हूँ अपने कानों से
ज़िंदगी तुम्हारे पथ में सैंकड़ों रुकावटें हैं
तुम्हारे सिर पर लाखों गाड़ियों का बोझ है
हमारे साँसों को तरस गए गाँवों के पास से
गुज़रकर तुम कैसे आ सकती हो
जबकि राहों में धूप उड़ रही है
मंडियों को जाती अनाज की गाड़ियों की धूल
जबकि सड़कों से पिघल रही है
तारकोल के नीचे बिछी हुई मनुष्यों की चर्बी
विश्वास रख हम तुम्हें निकाल लेंगे
टैंकों के शोर से
तुम्हारे कंधों से उतार फेंकेंगे
पत्थर के सिंहासनों का बोझ
फिर तुम्हें बरसों से नहीं
जिस्मों की हँसी से मापा जाएगा
मेरे गाँव की लड़कियों के सख़्त हाथों
के गिद्धे [1] में
तुम्हारे महकते बोलों को सुना जाएगा।

[1. लड़कियों का लोकनृत्य।]

●●●

टिमटिमाती एकाकी लौ वाला घर
ज़रूरी नहीं किसी वेश्या का ही हो
यह किसी विधायक का बँगला हो सकता है
शायद वहाँ मेंटल पीस पर रखे
महात्मा गाँधी के बड़े से चित्र के पीछे
मेरे बचपन में पराजित आदमियों की डिबिया पड़ी हो
— तब गोल पैसे चलते थे

और मैं उतना सा ही था
जितना किसी को पैसे के सुराख़ से दिखाई दिया
और बाकी शायद समूचा ही—

●●●

अलग होती है हमेशा भाषणों की भाषा
लेकिन रोती माँओं और बहनों की भाषा एक-सी होती है
अलग होती है भाषा
जो जनगणना के रजिस्टर में दर्ज है
घरों से उठते मरसियों की भाषा एक-सी होती है।

●●●

वे ही समझते हैं
चाँद की चाँदनी के गीतों से रिश्ते को
जिन्होंने पैरों से पढ़ा है भूगोल
जिन्होंने साँसों से सृजित किया है इतिहास

वे ही बता सकते हैं
ज़िंदगी में मोह का स्थान
जो नज़रअंदाज़ कर आए हैं
माँ की तड़पती बिलखन
महबूब के होंठों पर आई कोई पथराई ख़ाहिश

वे जानते हैं
चैत्र क्यों हँसता है
वे जानते हैं
सावन किसलिए है—
जिनके लिए मौसम का एहसास
काम खोजने न खोजने से जुड़ा है।

●●●

फिर सुना दिया गया है पुराना लतीफ़ा
फिर हमारे ज़िंदा होने की बात चली है
किसी आकाश में खोद दी गई थी
एक अँधी डरावनी खाई
हमारी हर सुबह फिसलकर उसमें जा गिरी
और हम लहूलुहान दिनों के टुकड़े लिए चलते रहे।

●●●

जीते हुए आदमी ! पसीने की, साँसों की महक के बग़ैर
तुम्हारे पास है ही क्या?
जीते हुए आदमी ! लालसाओं, सपनों के सिवा तुम्हारी झोली में
क्या है
तुम साम्राज्य से क्यों नहीं डरते, जीते हुए आदमी
उन्होंने पुलिस वकीलों पर बहुत खर्च किया है
समय हर बार तुम्हारे ही हक में क्यों गवाही दे देता है?
क्यों गलत हाथों में आकर इतिहास मर जाता है
जो धूल और धुएँ से सुर्ख़ हुए नयनों में
बिना लिखे भी सलामत रहता है।

●●●

हम ठीक-ठाक हैं, अपना पता देना
पता देना समुद्र के नीचे सोए जहाजों का
पता देना सफ़र के शोर का
धुकधुकी का, उस धुकधुकी से रिसती धमक का पता देना
पता देना कि ईश्वर की मौत से
श्रद्धालुओं का क्या बना
(पता देना जिन्होंने ईश्वर क़त्ल किया
उन श्रद्धालुओं का क्या बना)

कुछ भाषा, कुछ भावनाओं के जो कसाई उलझ पड़े थे
उनमें से कौन ताकतवर रहा, जल्द पता देना

पता देना वे चोर पकड़े गए या नहीं
जिन्होंने अच्छी-खासी हिंदी को कुछ-का-कुछ बना दिया
जिन्होंने बोल-बोलकर भाषा को कीचड़ बना डाला है

पता देना बाढ़ में
पानी के उतरने की लालसा बह गई या बच गई?

●●●

शुष्क रेतीले इलाके में
जहाँ मेरा जन्म हुआ
मूँगफली और गेहूँ के अलावा
एक आदमी नाम की फ़सल भी उगती है
कि जिसे बाकायदा बीज-खाद
और सींचने की ज़रूरत होती है
लेकिन हम लोग हैं
जो ईश्वर-आसरे पलकर
— साथ—
यहाँ के लोगों का
ईश्वर से अजीब रिश्ता है
कि चलते हैं तो रेत फाँकते हैं
... ...

●●●

गेहूँ की बालियों से परे
जनरल डायर का मक्कार चेहरा हँसता है
पाँच प्यारों के गद्दीनशीनों ने
औरंगज़ेबी टोपी पहनी है

बैसाखी का मेला कौन देखेगा?

[13 अप्रैल, बैसाखी के अवसर पर।]

●●●

इनसे मिलें
ये हैं आपके पुरखे
ये अब अपनी राख में जीते हैं
जीनेवालो, क्या आप इन्हें जानते हैं?

●●●

हुकूमत !
तुम्हारी तलवार का कद बहुत छोटा है
कवि की कलम से कहीं छोटा
कविता के पास अपना बहुत कुछ है
तुम्हारे क़ानून की तरह वह खोखली नहीं है
कविता के लिए तुम्हारी जेल हज़ार बार हो सकती है
लेकिन यह कभी न होगा
कि कविता तुम्हारी जेल के लिए हो।

●●●

हमारे लहू को आदत है
मौसम नहीं देखता, महफ़िल नहीं देखता
ज़िंदगी के जश्न शुरू कर लेता है
सूली के गीत छेड़ लेता है

शब्द हैं कि पत्थरों पर बह-बहकर घिस जाते हैं
लहू है कि तब भी गाता है

ज़रा सोचें कि रूठी सर्द रातों को कौन मनाए?
निर्मोही पलों को हथेलियों पर कौन खिलाए?
लहू ही है जो रोज़ धाराओं के होंठ चूमता है
लहू तारीख की दीवारों को उलाँघ आता है
यह जश्न यह गीत किसी को बहुत हैं—
जो कल तक हमारे लहू की खामोश नदी में
तैरने का अभ्यास करते थे।

●●●

ईश्वर न करे कि हम भूल जाएँ
बर्छी की तरह हड्डियों में धँसे बरसों को
जब हर पल किसी अकड़ाए शरीर की तरह सिर पर गरजता रहा
जब क्षितिज पर
कर्ज़ से बनी मिसल से
नीलामी के दृश्य तैरते रहे
जब हम फूल-सी बेटियों की
आँखों में आँखें डालने से सहमे
ईश्वर न करे कि हम भूल जाएँ
जब हमें इस्तेमाल किया गया
धमकी भरे भाषण सुनने के लिए
ईश्वर न करे कोई भूल जाए
कैसे धरती के मासूम कपोलों पर
रक्त छिड़का गया
जब चुने हुए विधायक
अपनी बारी के लिए कुत्तों की तरह उत्तेजित होते रहे
और सड़कों पर हड़ताली मज़दूरों का शिकार होता रहा
जब रक्त सनी आँखों को
अखबारों के पन्ने चिढ़ाते रहे
और असेंबलियों में हुई ठाठ-बाठ की चर्चा
बंगलौर में सीने छननी होने की सुर्खी
निगल जाती रही
जब रेडियो साबित रहा

और मगरमच्छ मुख्यमंत्री
पेट में पड़ी लाशों को बेटों की जगह बताता रहा
जब धुन दिए गए शाहकोट[1] की चीख़ों को
एक ठिगने से डी.एस.पी. का ठहाका जाम करता रहा।

[1. पंजाब का एक कस्बा।]

●●●

थके टूटे बदन को
लेसले दिल के सहारे जोड़ लेते हैं
परेशानी में ज़ख़्मी शाम का
तमतमाया हुआ चेहरा चूम लेते हैं
हम भी होते हैं, हम भी होते हैं

जुगनुओं की तरह पेड़ों में फँसकर भटक जाते हैं
लेकिन हम दहाड़ नहीं सकते
कभी रीं-री नहीं करते
हम रोज़ बेचैनी का पौधा चबाते हैं
हम भी होते हैं, हम भी होते हैं

हम धूप से घुल-घुलकर
दिन में रोज़ खपते हैं
अँधेरा सौ कुफ्र तौले
हमारा अस्तित्व अँधेरे में भी साकार रहता है
हम रातों की रंगीनी का हिस्सा भी बँटाएँगे
हम रात में भी होते हैं
हम हर वक़्त होंगे।

●●●

शूरवीरता में बुलाया जाता बकरा[1]
आधी-चिरी टाहनी की अपने ही बोझ से गूँजी कड़ा...क
अमली के काबू में आई बकरी की में-में की ध्वनि
पहला बच्चा जन रही युवती की भय-मिश्रित चीख़
बेटों के दुत्कारे बूढ़ों का जोड़ों की पीड़ा से असमय बेतुका हूँगना
बच्चे के लिंग से पहली बार माँस की परत हटते समय की
उत्सुकता, हैरानी, खुशी व पीड़ा

अचानक मौत का चक्कर खाकर
पंजाली के साथ गिरे भैंसे के सिर पर मँडरा रहे
किसी अदृश्य पंछी का सहम
विधवा की आँखों पर आया आसमान
—मराते लौंडे का अपने लिंग की ओर देखकर आत्मा का मुरझा जाना
शौक से .ख़ुद निकाली शराब की बोतल दबाकर
उस जगह को भूल जाने का अफ़सोस
किसी का अपने हुस्न से ज्यादा कुँवारे होने का गौरव
सी.पी.आई कामरेड के घर की छत पर लहरा रहे
लाल झंडे की बेशर्मी
अनपढ़ लड़की का रेत में उँगलियों से उकेरा
झूठमूठ के अपने प्रेमी का नाम
गुरुद्वारे की अरदास में शामिल पुलिस टाउट के मुँह से
निकला सरबत का भला
बुज़ुर्ग हो गए युगल की आखिरी बार की गई गृहस्थी की बेचारगी
गोली से शहीद हुए कामरेड के मुँह से निकले
इन्क़लाब ज़िंदाबाद का जोश
ज़ोरावर शरीक के दिए बदकार माँ के ताने की नमोशी
खेत में जल रहे गेहूँ के गट्ठरों की लौ में
हाथ में से किरकिर जाती मिट्टी को निकाली गरीब किसान की गाली
अहंकारी थानेदार के पैरों में पड़ी किसी शरीफ़ की पगड़ी से उठती
असुखद गंध
हस्तमैथुन करते भाई को अचानक देखे लेने पर
शरीफ़ लड़की के मन में उगी शर्म व नफ़रत
शोक करने आइयों में जन्म दिए गए लड़के की नाखुश खुशी।

[1. मुँह से निकाली जानेवाली खास ध्वनि]

●●●

तुम मेरे घर की तड़प को ही
मेरा घर समझना
जो भी चिन कर बनाएँगे
इमारत ही रहेगी
तुम भाप की गाती हुई लच्छी
जैसे खुद में ही खोई हो

तुम रास्तों की खुशबू हो...
धूल से रिसती रोशनी हो
मैं उग रहा हूँ किसी सींची गई रात में
तुम मेरी कच्ची कलियों पर लहराती
सुबह बनना

मैं तुम्हारी सोच की आहट हूँ
तुम्हारी रगों में दौड़ रहे वक़्त की
झनझनाहट हूँ
तुम्हारी मुस्कुराहट में ढली हुई
घटना हूँ
तुम्हारी नज़रों में बिंधने के लिए
धरती हूँ, अंबर हूँ

मैं भ्रम हूँ तुम्हारे कदमों में
जैसे रेत का घर
जब ज़रा-सा पाँव हिलाओगी
मैं भुरभुरा[1] जाऊँगा।

[1. जैसे बताशा पानी लगते ही 'भुर' (पंजाबी शब्द) जाता है।]

●●●

मैंने बहुत-से लोग देखे हैं बतंगड़ों का बोझ ढोते
और पूरा रास्ता छोटी-छोटी बातें उनके पास से छनती रहतीं
वे न जाने कब चले थे
लेकिन आज उन्होंने हर रास्ते को पतझड़ के पत्तों की तरह ढक दिया
है
कई आते हैं, और ठुड्डों से
साफ रास्ता बना सकने की कोशिश में नाकामयाब होकर
सफ़र को स्थगित कर देते हैं
वे लोग असल में माँ की गाली जैसे हैं
और वास्तव में अपनी संख्या से बहुत कम हैं
और मैं जिन लोगों संग चला हूँ
उनके कदमों में तूफान अँगड़ाइयाँ लेते हैं
... ...
... ...*
और हम जितने भी हैं
अपनी गिनती से बहुत अधिक हैं
और पीछे छोड़ जाते हैं
रिश्तों की कथाओं को बहाना
उन लोगों के लिए
जो बतंगड़ों का बोझ ढोते रहते हैं।

[* पंजाबी में ही ये पंक्तियाँ नहीं पढ़ी जा सकीं। रचना तिथि : 18.1.1970]

●●●

तब भी मेरे शब्द रक्त के थे
तब भी मेरा रक्त लोहे का था
जब मैं जलते फूलों में
घिरा पड़ा था—
फिर जब मैं जल रहे फूलों से बाहर आकर
तलवारों के जंगल में घुसा
तो भी मेरे शब्द रक्त के थे

तो भी मेरा रक्त लोहे का था
और अब मेरे सफ़र में
जलते फूलों की गंध नहीं
पिघले हुए फौलाद की गंध आती है
और मेरा सफ़र
मेरा फूल से रक्त तक का सफर
एक इतिहास है
शब्द से आवाज़ तक का इतिहास—
और अब मुझे
होंठों पर किसी भी खूबसूरती का ज़िक्र लाने से पहले
तलवारों के कई जंगलों से
गुज़रना पड़ता है।

●●●

इससे पहले कि
रविवार रम जाए तुम्हारी हड्डियों में
सप्ताह के सारे दिन बनकर
मेरी कौम, आ हम सुबह की
व्याकुलता को पी जाएँ

इससे पहले कि
लड़की जमा लड़का बराबर बच्चा हो
मेरी क़ौम, आ हम रिश्ते की तरह
ज़रूरतों की संस्था में घुल जाएँ

इससे पहले कि यू.एन.ओ. का आदर
कुतर कर सरहदों को चरा दिया जाए
मेरी क़ौम, आ हम खानाबदोशी
का प्रस्ताव पास करवा लें।

●●●

आज इन्होंने दुश्मनों और दोस्तों के बीच खींची
लकीर को भी गिरा दिया है
लेनिन की तस्वीर उठाकर चले
इन गाँधी की बरसी मनानेवालों ने

कोठियों में सोफों पर बैठकर क्रांति का ज़िक्र
कितना पवित्र मज़ाक है
जो ज्यादा-से-ज्यादा ये फाँसी पर झूल गयों का कर सकते हैं

जब पत्थर के गाँधी की ज़रा-सी धुनाई पर
प्रोटेस्ट, भूख-हड़तालें, जाँच-माँगें हो सकती हैं
तो जीवित गाँधियों को भी उकसाया जा सकता है
कि वे देश-भर की भावनाएँ उलझाए रहें
और चुन-चुनकर हर भगतसिंह को
क़त्ल करवा दिया जाए...

●●●

मुझे विरासत में ऊँघ मिली है
बार-बार मेरा असभ्य पंजाब आता है अपने पवित्र फ़रजंद के पास
जो मुझे ग्रेट ईस्टर्न होटल से भाग जाने के लिए कहता है
मैं उसे सभ्य होने के उपदेश देता हुआ
जंगलों में जाकर बब्बर शेर को मारना चाहता हूँ

मेरे असभ्य समाज को पता है
कि शेर आसाम के जंगलों में नहीं
मुदकी या सभरावाँ के मैदानों में भी
जब चाहे सरेआम दहाड़ता है
लेकिन मुझे विरासत में ऊँघ मिली है
उसमें घायल हिरन का दिल हो तो हो
उसमें मिर्ज़ा की असावधानी 'गर हो तो हो
वैसे उसमें
लोमड़ी के बचे होने के बग़ैर

हर चीज़ ग़ैर है।

●●●

जिन्होंने उम्र-भर तलवार का गीत गाया है
उनके शब्द लहू के होते हैं
लहू लोहे का होता है
जो मौत के किनारे जीते हैं
उनकी मौत से ज़िंदगी का सफ़र शुरू होता है
जिनका लहू और पसीना मिट्टी में गिर जाता है
वे मिट्टी में दबकर उग आते हैं।

●●●

धुँधली और मटमैली-सी चाँदनी— किसी बेगार करनेवाले
की तरह उदासी में डूबी शहर की कद्दावर इमारतों
से सहमी-सहमी आई है—
यह दिशाओं की सच्चाई भूलती है
मेरे में सुकरात भी है
जिस सूर्य की धूप मुझे विवर्जित है
मैं उसकी छाया से भी इनकार कर दूँगा
मैं हर खाली सुराही तोड़ दूँगा।

●●●

लौटा दो मेरे पंख यह तो मौत जैसी बात है
बुत होकर रह जाना और चौकों में गाड़े जाना—
मैं धुर से सिरजनहार हूँ
मैं जब भी जन्मता हूँ
जीने की सौगंध लेकर जन्मता हूँ
... ...

लौटा दो मेरे पंख यह तो मौत जैसी बात है।

●●●

मनुष्य
दिन की ढलान पर फिसलता
एक दूसरे को पकड़कर सँभालने के यत्न
शराबी हो रहा अँधेरा और बातों की ओट में
उनके लड़खड़ाते अर्थ

[डायरी, 1982]

●●●

समय के शुष्क समुद्र से उठती लहर
अपने मछली वक्र के सहारे ज़िंदा होगी

[डायरी, 1982]

●●●

बंद दरवाज़े पर खड़े
सपने में पुनः लौटने की कामना करते लोग
न जीने क़ाबिल और न मरने क़ाबिल ही रहे
हालाँकि सपने में जला रक्त भी ख़ास अपना था
सपने के भीतर या बाहर
सपने और सोच पर भी आपका पूरा-पूरा
वास्तविक अधिकार होता है
क्योंकि यह किसी की ओट से सोच-समझकर दी गई
बख़्शीश नहीं है।

[डायरी, 1982]

●●●

'गर सुबह नहीं तो शाम को देना पड़ेगा
सूरज के क़त्लों को भी इल्ज़ाम देना पड़ेगा
बिगड़ी शैतानगी को नकेल डालनी होगी
हर चौराहे पे बलि शैतान देना पड़ेगा

इन्सानियत के सफ़र पर चलते हुए
... ...
तोड़ दिए जाएँगे अब हौसले तूफान के
दीपकों को सिदक का पैग़ाम देना पड़ेगा।

●●●

समय ओ भाई समय
कुछ तो कह दो
हम तुम्हारे संग हो क्या कुछ करें?
हमारा समय है गुनाहों भरा
कैसे पार जाएँ हम इस भवजल[1] से?

[1. भवसागर।]

●●●

मैं जानता हूँ उन्हें, कैसे ज़रूरत पड़ने से वे
पिछले मौसमों तक को भी
हमारे सिर पर हथियारों की तरह तान लेते हैं

मैं जानता हूँ उन्हें
किस तरह कच्ची सोच को घेरा डालने के लिए
वे हज़ारों रास्तों से आते हैं

उन्हें जाच है

हमारे ही जिस्मों को
हमारे खिलाफ़ इस्तेमाल करने की।

[एक कार्डनुमा काग़ज से।]

●●●

मेरे पास कोई चेहरा
संबोधन नहीं कोई
धरती का पागल इश्क शायद मेरा है
और इसीलिए जान पड़ता है
मैं हर चीज़ पर से हवा की तरह सरसरा कर गुज़र जाऊँगा
सज्जनों
मेरे गुज़र जाने के बाद भी
मेरे सरोकार की बाजू पकड़े रखना।

●●●

मुझे पता है
प्रतिमानों की रेतीली दीवार से
माँ-बाप की झिड़कियों से
तुम्हारे गले लगकर
मैं रोऊँगा नहीं,
संवदेना के कोहरे में
तुम्हारे आलिंगन में याद ऐसे फैल जाती है
कि पढ़ी नहीं जाती
अपने खिलाफ़ छपती ख़बरें

मुझे पता है कि चाहे अब नहीं चलते
सुराखवाले गोल पैसे
लेकिन पीछे छोड़ गए हैं वे
अपनी साजिश

कि आदमी अभी भी उतना है
जितना किसी को गोल पैसे के सुराख से नज़र आता है।

[एक दोस्त को लिखे 11-5-1975 के पोस्टकार्ड से।]

जितने भी माँसखोरे हों

जितने भी माँसखोरे हों हथियार
यातनादायी व आधुनिक हों हथियार
भुगता नहीं सकेंगे कभी भी
प्रेम-कविता को
क़ातिलों के हक में।

ग़ज़ल-1

दहकते अंगारों पर सोते रहे हैं लोग
इस तरह भी रात रोशनाते रहे हैं लोग।

न क़त्ल हुए, न होंगे इश्क के गीत यह
मौत की सरदल पर बैठ, गाते रहे हैं लोग।

आँधियों को यदि भ्रम है, अँधेरा फैलाने का
आँधियों को रोक भी पाते रहे हैं लोग।

ज़िंदगी का अपमान जब कभी किया है किसी ने
मौत बन कर मौत की, आते रहे हैं लोग।
तोड़ कर मजबूरियों की जंजीरों को शुरू से
जुल्म के गले जंजीर डालते रहे हैं लोग।

ग़ज़ल-2

डूबता चढ़ता सूरज रोज़ ही हमें सलाम कहे
पकड़ लो यह तो नक्सली है कैसी बात सरेआम कहे।

खेतों में चारे के दुम्बे मुक्कों की तरह तने हुए
खनक-खनककर वृक्ष शीशम का जूझने का पैग़ाम कहे।

ज़रा-ज़रा सी रक्तिम बादल जुझारू अक्षर बने हुए
लोकयुद्ध अम्बर पर छपा, क्रांति का ऐलान कहे।

चिड़ियों का झुंड बेकाबू बना झपट-झपटकर लौट जाए
बताए जाच गुरिल्ला युद्ध की, योद्धाओं को प्रणाम कहे।

मौसम को जेलों में डालो, नहीं तो सब कुछ चला है
सवेरा कहे तगड़े हो फिर उठने के लिए शाम कहे।

ज़र्रा-ज़र्रा चीख़ रहा है कवियों का कुछ दोष नहीं
कवि तो सीधे-सीधे होते, लिखते वही जो संग्राम कहे।

ग़ज़ल-3

मैं तो ख़ुद ही तैर आऊँगा चनाब का पत्तन ओ यार
तेरे माँस की लालच की ख़ुदग़र्ज़ी नहीं।

कच्चे पक्के पर ही कर लेना है हर हाल में ऐतबार
जान का डर नहीं परखने की सिरदर्दी नहीं।

जाओ सो जाओ अपनी झोंपड़ी में पत्तन पर न हो ख़्वार
तुम्हारी कुम्हारिन तो साहिबां जैसी नहीं।

सदा तूफानों संग जूझकर ही सिरे चढ़ता है प्यार
लहरों से दुबक जाना मेरी मर्ज़ी नहीं।

मैं तो हर रात लहरों से करती आई हूँ खिलवाड़
मेरे मरने से सिदक की बात मरती नहीं।

मेरे महिवाल तेरी तब भी बजेगी सितार
तेरी ख़ादिम हूँ ढील चलने में ज़रा भी करूँगी नहीं।

नाच-बोलियाँ व दोहे

नाच बोलियाँ व दोहे पंजाबी लोकगीत की परंपरा में आते हैं। बोलियों के साथ युवा स्त्री-पुरुष गिद्धा या भंगड़ा जैसे लोकनृत्य करते हैं। इन लोकरंग की रचनाओं का इनकी सधी लय के साथ अनुवाद मुश्किल है। इनका देवनागरी लिप्यंतरण व भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

बाग लवाइया, बगीचा लवाइया विच विच फिरदे मोर
हुण असां नहीं छड्डणे इह फसलां दे चोर
हुण असां नहीं छड्डणे-

(बाग लगवाया और बगीचे लगवाए, जिनमें मोर नाचते हैं। अब हम इन फसल चोरों को नहीं छोड़ेंगे)

किक्करां वी लंघ गई बेरियां वी लंघ गई
लंघणा रहि गया खाला लोकां नूं डर कोई ना
होऊ सरकार नूं पाला लोकां नूं डर कोई ना—

(कीकर व बेरियां तो उलांघ लीं अब तो सिर्फ खाल लांघना ही रह गया है। लोगों को तो कोई डर नहीं है, सरकार को भले ही डर हो)

तिक्खी नोक दी जुत्ती नी धस गई नाले धस गईयां खुरीयां
बई मारो मार दरदीयां यारो फौजां किधर नूं तुरीयां
बई फौजां तुरीयां जंग जित्तणे नूं डंडीयां सडकां मुडीयां
फौजा जनता दीआं कदों मोडियां मुडीयां
फौजा जनता दीआं :

(तीखी नोक वाली जूती भी घिस गई और खुर्यिां भी घिस गईं। भई ये मारो मार कर रही फौज किधर को जा रही है। भई ये फौज तो युद्ध जीतने वाली है इससे पगडंडियां सड़कें टूटने लगी हैं। भई ये जनता की फौज है ये लौटाने से कब लौटी है, ये तो जनता की फौज है—)

गां नहीं मिलदी, वच्छा नहीं झल्लदी, गां नूं निआणा पा लउ/ (बई) वोटां लै के इंदरा मुक्कर गई पट्टे दे विच बिठा लउ/ (बई) इंदरा ने साडी

गल्ल नहीं सुणनी डांगी लाग चढ़ा लउ/ (बई) कट्ठे होके करीए हल्ला हाकम लंमे पा लउ/ जुल्म दी जड़ बढ्ढणी दातीयां तेज करा लउ/ जुल्म दी जड़ बढ्ढणीं—

(गाय दूध नहीं देती, बछड़े को वह सहन नहीं करती, उसे रस्सी से बांध लो। भाई इंदिरा वोट लेकर मुकर गई है, उसे सबके सामने बिठाओ, इंदिरा हमारी बात नहीं सुनेगी इसलिए अपनी लाठियां तैयार कर लो। भाई इकट्ठे होकर आक्रमण करें और शासकों को लिटा दें। जुल्म की जड़ हमें मिटा देती है, इसलिए दरांते तेज करवा लें। जुल्म की जड़ उखाड़ फेंकनी है—)

कर ला कर ला जुल्म हुकूमते मार ला डाके धाड़े
(नी)जां अत्त चुकदे बाहले पापी जां अत्त चुक्कदे माडे
(नी)तेरे तां दिन लगदे थोड़े लच्छण दिसिदे माडे
(नी)जुल्म तेरे दी किसम पुरानी नवें न कोई पड़ावे
(नी)चुण चुण के अणखीले योद्धे तूं जेलां विच ताड़े
गज्जदे शेरां ने कदे ना कढ्ढणे हाड़े।
गज्जदे शेरां ने—)

(ऐ हुकूमत तू जितना चाहे जुल्म कर ले, डकैतियां कर ले, मार धाड कर ले। अरी या तो इतना जुल्म ज्यादा पापी लोग करते हैं या फिर बुरे लोग करते हैं। अरी मुझे तो तुम्हारे दिन पुग गए लगते हैं, लक्षण खराब दिख रहे हैं। तुम्हारे जुल्म की वही पुरानी किस्म है, ये कोई नए पंगे नहीं हैं। अरी तुमने चुन-चुन कर योद्धाओं को जेलों में ठूंस दिया है लेकिन ये गरजते शेर कभी भी तुम्हारे सामने झुकेंगे नहीं ये गरजते शेर—)

होरना तां पा लए बंगले कोठियां तूं किऊं पा लाई छन्न ओए जट्टा
उठ्ठ मुंह शाहां दे भन्न हो जट्टा, उठ्ठ मुंह शांहां दे—

(औरों ने तो बंगले और कोठियां बना लीं, तूने झोंपड़ी ही बना ली है। ओ यार अब उठ खड़ा हो और सेठों के मुंह तोड़ दे।)

पालो पाल मैं डेकां लाईयां उत्ते दी लंघ गई तित्तरी
वड्डी हवेली चों—

(मैंने तो साथ-साथ डेंक लगाई थी, ऊपर से तीतर निकल गया। बड़ी हवेली में से कोई (स्त्री) चीखें मारती निकली- बडी हवेली से—)

तेरी मेरी लग्ग गई टक्कर लग्ग गई सरे बाज़ार
तूं आपणी दौलत तों बड़कें मेरा सच्च हथियार
मैनूं छिड़िया रोह दा कांबा तैनूं चढ़े बुखार

नाले डेंगा तैनूं मित्थ के नाले तेरी सरकार
सांभ हुण मेरा हुण वार अज्ज ताईं तूं लुट्टियां—

(मेरा और तुम्हारा टकराव सरे-बाज़ार हो गया है। तुम अपनी दौलत के जोर पर बड़क रहे हो, मेरा हथियार सच्च है। मुझे तो रोब की कंपकंपी छिड़े हुई है, तुझे बुखार चढ़ रहा है। तुम्हें भी गिराना है और तेरी सरकार को भी। आज तक तो तुमने लूटा है अब तू मेरा वार संभाल—)

दोहे

छप्पड़ दीए टटीरीए मंदे बोल न बोल
दुनियां तुर पई हक्क लैण तूं बैठी चिक्कड़ फोल
पिंड दा घर-घर होइया कट्ठा
पट्टेच वजदा ढोल गरीबू मज्हबी दा
दौलत शाह नाल घोल ओ गभ्भरुआ—

(ताल की टटीहरी, तुम मंदी बातें न कहो, दुनिया तो अब अपने हकों की लड़ाई लड़ रही है, तुम बैठी कीचड़ मत फोलो। गाँव का घर-घर इकट्ठा हो गया है, अब गाँव की चौपाल में ढोल बज रहा है कि गरीबू मजहबी और दौलत शाह के बीच अब कुश्ती होगी। अरे जवान—)

विंग तड़िंगी लक्कड़ी उत्ते बैठा मोर
कम्मीं विचारे टुट्ट-टुट्ट मरदे हड्डियां लैंदे खोर
सेठ लोक लुट्टदे ना रज्जदे खोह खांदे मंगण होर

(बेचारे कमज़ोर मर-मर कर अपनी हड्डियां तक गला देते हैं। लेकिन सेठ-साहूकार लूट-लूट कर भी और माँगते रहते हैं। ओ जवान हो-)

उच्चा बुरज लाहौर दा हेठ वगे दरिया
आ मजदूरा शहिर वालिया मैं तेरा जट्ट भरा
तैनूं लुट्टदे कारां वाले मैनूं पिंड दे शाह
आजा दोवें रल चलीए सांझे दुश्मन फाह।

(लाहौर के ऊंचे बुर्ज के नीचे नदी बहती है। ओ शहर के मजदूर भाई मैं तुम्हारा जाट भाई हूँ। तुम्हें कारों वाले लूटते हैं और मुझे गांव के सेठ लूटते हैं। आओ हम दोनों मिलकर साझे दुश्मनों को हरा दें। ओ जवान हो—)

भैरों बैठा खूह ते खुद ही करे तदवीर
चन्ने आहमो-साहमने कांजप सिमधी तीर
चक्कला चक्कली इँ मिले जिउं मिले भैण नूं वीर
जट्ट गधी ते इँ बैठा जिउं तख्ते बहे वज़ीर
टिंडा दे गल विच गानियां इह खिच्च खिच्च लिआउंदीआं नीर
कणकां च बापू इँ खड़ा जिउं लोकां विच वज़ीर
बापू-बापू जड़ तो बढ़्ढ़िया उच्चे होए कसीर
अणखी लोकां दी होणी जित्त अखीर, ओ गभ्भरुआ—

(कुएं पर बैठा भैरों कुएं की कुछ तदबीर कर रहा है। चन्ने आमने-सामने बैठे हैं, चकला-चकली ऐसे मिल रहे हैं जैसे भाई-बहन। जाट (कुएं की) गधी पर ऐसे बैठा है, जैसे तख़्त पर वज़ीर बैठता है। टिण्डों के गले में जो गानियां हैं, वे जल भर-भर कर ला रही हैं। कुएं के आगे से पानी ऐसे गिर रहा है, जैसे ब्राह्मण खीर खा रहा हो, नाकी बेचारा ऐसे फिर रहा है जैसे दर-दर फिरने वाला फकीर हो। क्यारों में पानी ऐसे बंट गया जैसे लोगों में मंत्री खड़ा होता है। बापू को जड़ से उखाड़ा तो पौधे ऊंचे हुए। आखिर में तो गर्वीले लोगों की ही जीत होगी। ओ जवान ओए—)

अक्क दी ना खाईए कैवली सप्प दा न खाईए मास
अज्ज तक सानूं रहे जो लुट्टदे उन्नां तो काहदी आस
हुण भावें इंदरा मुड के जम्म लए नहीं करना विश्वास
बथेरे युद्ध हो गए हुण काहदा धरवास। ओ गभ्भरुआ-

(आक का फल नहीं खाना चाहिए, सांप का मांस नहीं खाना चाहिए, जो हमें आज तक लूटते रहे हैं, उनसे कैसी आशा हो सकती है। अब तो चाहे इंदिरा दोबारा जन्म ले ले, तब भी विश्वास नहीं करना। अब तक बहुत लुट चुके हैं, अब कैसा संतोष करना है। ओ जवान ओ—)

आले आले बोहटियां बोहटी बोहटी रुं
नाले किसानां तूं लुट होइया नाले कंमीयां तूं
इक्को तक्कड़ च बन्न के उन्नां ने वेचिया दोहां नूं
मंडियां दे मालक दा किऊं नहीं कढदे धूं। ओ गभ्भरूआ—

(आसपास टोकरियां हैं, जिनमें रुई भरी है। किसान तेरा भी शोषण हुआ और खेत मज़दूर तेरा भी। उन्होंने दोनों को एक ही तराजू में बांध कर बेच डाला।

तुम लोग मंडियों के मालिक का धुआं क्यों नहीं निकाल देते। ओ जवान हो)

ओह गए साजन, ओह गए लंघ गए दरिया
तेरे यार शहीदियां पा गए तेरा विचे ही हाले चाअ
फौज तां कहिंदे जनता दी ना करदी कदे पड़ा
खंडे दा की रक्खना जे लिया मिआने पा। ओ गभ्भरुआ—

(वे गए साजन, वे गए और नदी पार गए। तुम्हारे दोस्त तो शहीद हो गए, तुम्हारा चाव अभी अधूरा है। जनता की फौज तो सुना है कि कभी पड़ाव नहीं डालती। यदि म्यान में ही डालनी हो तो तलवार रखने का क्या फायदा? ओ जवान ओ—)

एकमात्र उपलब्ध हिंदी कविता

वो मेरा वर्षों को झेलने का गौरव देखा तुमने?
इस जर्जर शरीर में लिखी
लहू की शानदार इबारत पढ़ी तुमने?
कविता हो न हो इतिहास को
मृत शरीर की ज़िंदा लोथ[1] के साथ
मात्र माँस के धागे से जुड़ा होना।

[रचनातिथि : 15 जनवरी 1982]

1. लाश

पाश : जीवन-यात्रा

चमनलाल

पाश का जन्म 9 सितंबर 1950 को पंजाब के जालंधर जिले की नकोदर तहसील के गाँव तलवंडी सलेम में हुआ। पाश का परिवार मध्यवर्गीय किसान परिवार था। पाश के पिता सोहनसिंह संधू भारतीय सेना में सिग्नल कोर की सेवा में थे, जहाँ से वे मेजर के पद पर पहुँचकर रिटायर हुए। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि पाश के पिता स्वयं एक कवि थे और मोहनसिंह 'निर्मल' उपनाम से कविता लिखते थे, किंतु छपने से उन्हें संकोच रहा। न सिर्फ़ छपने से ही, वरन् उन्होंने अपनी रचनाओं की कभी चर्चा भी नहीं की। पाश व पाश के बड़े भाई ओंकारसिंह ने एक बार घर में उनकी नोटबुक में ये कविताएँ देखीं, किंतु उनके पिता इन पर चर्चा करने के लिए तैयार नहीं थे।

पाश तो पाश की साहित्यिक यात्रा का नाम है, यद्यपि अब उसकी पहचान ही इस नाम से जुड़ गई है। परिवार ने उसका नाम अवतारसिंह रखा था और घर में उसे सभी 'अवतार' या 'तार' कहकर ही बुलाते थे। पाश के ननिहाल परिवार के मामा-मौसी भी तलवंडी में ही रहते हैं। उनका पैतृक परिवार भी काफी बड़ा है और उनके दूरदराज़ के चाचा तलवंडी में रहते हैं।

पाश के पिताजी के सैनिक सेवा में होने के कारण घर-परिवार की देखभाल पाश की माताजी और दादाजी पर थी। पाश के एक बड़े भाई ओंकारसिंह और दो छोटी बहनें हैं जो क्रमशः हालैंड और अमेरिका में रहती हैं। अब पाश के माँ-बाप भी अमेरिका चले गए हैं। परिवार के पास कुछ ज़मीन है।

घर में पिता की अनुपस्थिति का असर बच्चों की पढ़ाई पर पड़ा। माँ स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त न थीं, अतः बच्चों की पढ़ाई की ओर ध्यान देने में सक्षम न थीं। यद्यपि बच्चे प्रतिभाशाली थे, पर साथ ही वे काफी संवेदनशील और अन्तर्मुखी भी थे। पाश के बड़े भाई ओंकारसिंह को उच्च शिक्षा के लिए जालंधर के एक कालेज के होस्टल में रखा गया तो कुछ समाज विरोधी तत्त्वों की हरकतों से तंग आकर उसने पढ़ाई ही छोड़ दी। पाश ने मैट्रिक भी पास

नहीं की, लेकिन उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और संवेदनशीलता उसे छोटी आयु में ही परिवार के सीमित दायरे से बाहर ले गई। पंद्रह वर्ष की आयु में उसने अपनी सर्वप्रथम कविता लिखी, जो उसने अपने पिता को डाक से भेजी। पिताजी के साथ विशेष रूप से व परिवार के अन्य सदस्यों से पाश से संबंध मित्रतापूर्ण थे। इसकी जानकारी परिवार को लिखे उसके पत्रों से मिलती है।

पंद्रह वर्ष की आयु में पाश ने कविता लिखी और इसी उम्र में वह कम्युनिस्ट आंदोलन के दायरे में भी आ गया। 1967 तक वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) से संबंधित नौजवान सभा के निकट आ गया और भाकपा कामरेड चैनसिंह चैन से उसका संपर्क बना, जो नक्सलवादी आंदोलन से जुड़ने के बाद भी बना रहा। आंदोलन के दायरे में आने के बाद स्कूल-कालेज की पढ़ाई में उसकी दिलचस्पी और भी कम हो गई। इससे यदि एक ओर उसकी सृजनात्मक प्रतिभा के विस्फोट में सहायता मिली तो दूसरी ओर बाद के जीवन में कुछ घरेलू किस्म की समस्याएँ भी पैदा हुईं।

1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी गाँव से शुरू हुए किसान विद्रोह ने शीघ्र ही पूरे देश को अपने घेरे में ले लिया और नवयुवक इस आंदोलन की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए। पाश जैसा संवेदनशील और तीक्ष्ण बुद्धि का स्वामी नौजवान इस आंदोलन से अप्रभावित कैसे रह सकता था? न सिर्फ़ पाश, उसके क्षेत्र के अन्य कई साथी, अमरजीत चंदन, महिन्द्रसिंह संधू आदि भी इस आंदोलन की ओर प्रेरित हुए।

पाश का सृजन इन दिनों अभिव्यक्ति की राह की तलाश में था। पाश ने अपने खेतों के पास कुएँ के निकट 'भोरा' बनाया हुआ था, जिसमें उसने माओ-त्से-तुंग और हो-चि-मिन्ह के चित्र लगाए हुए थे। मैट्रिक से भी कम शिक्षा प्राप्त होने के बावजूद पाश इन दिनों पंजाबी, हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से गंभीर रूप से अध्ययन कर रहा था। पाश की दिलचस्पी सिर्फ़ साहित्य, कला या राजनीति तक ही सीमित न थी, वह दर्शन, विज्ञान आदि सबके बारे में जानना चाहता था। अपने व्यक्तिगत स्वभाव में पाश परंपरावादी न होते हुए भी बहुत अनुशासित जीवन जीने का आदी था। उसके दोस्त बताते हैं कि कई बार वह बाईस घण्टे तक बिना विश्राम किए पढ़ता रहता था। नक्सलवादी आंदोलन के कार्यकर्त्ता इस बीच उसके यहां आने लगे थे, किंतु वह किसी राजनीतिक कार्रवाई में शामिल न हुआ। इसके बावजूद पाश को 1969 में एक झूठे मुकदमे में फँसाकर जेल में डाल दिया गया। जेल भेजे जाने से पहले उसके कोमल शरीर को तरह-तरह से यंत्रणाएँ दी गईं, किन्तु पाश की आत्मा व विचार उसके शरीर से अधिक मजबूत थे। वह सारी यंत्रणाएँ झेलकर

भी अपने विचारों पर अडिग रहा। यही समय उसकी काव्य-प्रतिभा के विस्फोट का था और यह विस्फोट बहुत ज़बरदस्त था। जेल से उसकी कविताएँ बाहर आती रहीं और ये कविताएँ अमरजीत चंदन द्वारा संपादित 'दस्तावेज' मोहनजीत द्वारा संपादित 'आरंभ' व 'स्वतंत्र संग्रह' के रूप में 'लौहकथा' में छपीं तो पंजाबी भाषा में एक युग-प्रवर्तक व एक नयी धारा के प्रमुख प्रतिनिधि व प्रतीक कवि पाश का जन्म हो चुका था। 20 वर्ष की कच्ची उम्र में इतना सम्मान किसी भी भाषा के कम ही लेखकों को हासिल हुआ है।

1971 में पाश जेल से रिहा होकर बाहर आया और आते ही साहित्यिक मोर्चे पर सक्रिय हो गया। पाश प्रचार से दूर रहने वाला व्यक्ति था। जेल से बाहर आकर उसने अमरजीत चंदन और महिन्द्र सिंह संधू (उन दिनों 'जनतांत्रिक जत्थेबंदी' पत्रिका के संपादक और इन दिनों जनतांत्रिक अधिकार सभा पंजाब के अध्यक्ष) आदि के सहयोग से नकोदर कस्बे को अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया। किसी भी मौका-ब-मौका, जैसे रेल हड़ताल, प्रधानमंत्री की पंजाब यात्रा आदि पर सप्ताह-दस दिन की जेल-यात्रा पाश के जीवन का हिस्सा बन गई थी। इन दिनों एक ओर केंद्रीय पंजाबी लेखक सभा 'अनरजिस्टर्ड' की गतिविधियाँ थीं तो दूसरी ओर 'हेम ज्योति', 'लकीर', 'माँ', 'रोहले वाण' आदि पत्रिकाएँ बुलंदी पर थीं। पाश व उनके साथियों ने इन दिनों नकोदर और जालंधर में कई साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें बिहार के हिंदी कवि आलोक धन्वा भी शामिल हुए थे। इन दिनों पाकिस्तानी पंजाबी कवि अहमद सलीम भी पंजाब आया था, जिसे संबोधित होकर पाश ने 1971 में जेल में 'अहमद सलीम के नाम' कविता लिखी थी।

पाश ने इन दिनों अपने गाँव से 'सिआड़' पत्रिका भी निकाली। राजनीतिक क्षेत्र में पाश इन दिनों नक्सलवादियों के जन-आंदोलन को दिशा देनेवाले नागी रेड्डी ने नाम से जाने जानेवाले गुट के निकट आ गया था। इसी गुट की राजनीतिक-सांस्कृतिक समझ के अनुसार 1973 में 'पंजाबी साहित-सभिआचार मंच' की स्थापना की गई थी। पाश की कविता इन दिनों बहुत परिपक्व हुई।

1974 में पाश का दूसरा काव्य संग्रह 'उड्डदे बाजाँ मगर' छपा। पाश चाहे लेखन से कमाई करने वाले लेखकों में से नहीं था, किंतु प्रकाशकों द्वारा लेखकों को ठगने के व्यवहार से उसे बहुत खीझ होती थी। अपनी डायरी में उसने एक जगह लिखा है कि कैसे उसके इस संग्रह के प्रकाशक ने उसे कुल रायल्टी पौने चार सौ के क़रीब दी। पाश शायद आज भी पंजाबी का सबसे अधिक बिकने वाला कवि है। हिन्दी में उसके प्रथम संग्रह 'बीच का रास्ता नहीं होता' की रिकार्ड बिक्री हुई। एक वर्ष के भीतर उसका प्रथम संस्करण

बिक गया, किंतु पाश को या उसके परिवार को उसके पंजाबी प्रकाशक की ओर से कभी कुछ नहीं दिया गया।

पाश को डायरी लिखने की आदत थी, लेकिन डायरी-लेखन वह सिर्फ़ निजी जीवन की घटनाओं के विवरण के लिए नहीं, वरन् अपने सैद्धांतिक विचार भी वह डायरी में अभिव्यक्त करता था। जब कभी पाश की पूरी डायरियाँ या उनका संपादित रूप प्रकाशित हुआ तो उसकी सृजनात्मक प्रतिभा के अन्य पहलू भी उजागर होंगे।

आपात् स्थिति के दौरान पाश को पंजाब में गिरफ्तार नहीं किया गया था, लेकिन जम्मू कश्मीर में, जहाँ उन दिनों शेख अब्दुला सत्ता में थे, पाश ने इंदिरा गांधी के खिलाफ़ बोलकर अपनी गिरफ्तारी की तैयारी कर ली थी। इस बीच जैसा कि 'हमारे समयों में' की भूमिका में पाश ने स्वीकार किया, वह अन्तर्मुखता की ओर बढ़ रहा था। 'पंजाबी साहित-अभिआचार मंच' व उसका मुख्य पत्र 'हेम ज्याति' अपना अस्तित्व खो बैठे थे। इसी बीच पाश ट्राट्स्कीवाद से प्रभावित हुआ और उसने ट्राट्स्की का अध्ययन किया। कम्युनिस्ट आंदोलन की कमजोरियों को उसने नोट किया और 'कामरेड से बातचीत' शीर्षक कविताओं में अपनी इन्हीं भावनाओं को उसने अभिव्यक्ति दी। पाश की कविताओं के क्रांतिकारी पक्ष की चर्चा तो की जाती है, किंतु उसके क्रांतिकारी समर्थक बड़ी सुविधा से इन कविताओं को नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

इन कविताओं से पाश के व्यक्तित्व का एक और विशेष लक्षण प्रकट होता है। पाश अपने जीवन के प्रत्येक व्यवहार और अपनी कविता, दोनों में ही बहुत बेबाक व्यक्तित्व था। उसने न तो जीवन में और न ही कविता में कोई हेराफेरी की और काफी हद तक उसका बेबाक व निर्भीक व्यक्तित्व ही उसकी शहादत का कारण भी बना।

पाश को शराब पीने व अन्य नशे करने की काफी आदत थी और वह इश्क भी खुलकर करता था। इस बात को न तो अपने परिवार से और न ही मित्रों से वह छिपाता था। यही बात उसके विचारों के संबंध में भी कही जा सकती है। वह खुलकर पूरी शिद्दत से अपने विचारों को अभिव्यक्त करता था, चाहे कविता में या गद्य में। वह कभी भी अपने अहम् की रटन न लगाता था, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि उसे अपनी आत्म-प्रतिभा की पहचान न थी। अपने पिता को लिखे एक पत्र में, पाश ने अपने सबसे अच्छे कवि होने की संभावना के संबंध में खुलकर लिखा है। किंतु स्वयं को कवि रूप में स्थापित करवाने के लिए पाश आलोचकों के पीछे नहीं भागता था। पाश को इंसानी आन-बान की जितनी बड़ी चिंता थी उतनी ही व्यक्तिगत स्तर पर अपनी आन-

बान की भी थी और इससे उसने कभी समझौता नहीं किया, न घर में और न घर से बाहर।

रोजी-रोटी की समस्या को हल करने के लिए पाश ने कई वर्षों के अंतराल के बाद डिग्री संबंधित पढ़ाई शुरू की। मैट्रिक पास कर जे.बी.टी. का कोर्स किया। घर वालों को बिना बताए उसने ईवनिंग कालेज, जालंधर में बी.ए. में दाखिला ले रखा था, जो शायद उसने पूरी नहीं की। पाश परीक्षाओं की ओर ठीक से ध्यान कभी न दे पाया था, पर्चा किसी अन्य विषय का होता था और वह तैयारी किसी और विषय की करता रहता था।

आपात् स्थिति की समाप्ति पर पाश ने नौकरी करने की कुछ गंभीर कोशिशें कीं। 'देस-परदेश' (लंदन का पंजाबी साप्ताहिक) ने उसे अपना भारतीय प्रतिनिधि बनाया। इस बीच उसके इंग्लैंड जाने की भी चर्चाएं हुईं, किंतु इस पत्र के संपादक के कुछ पहलुओं को जानकर पाश उससे समझौता न कर सका व कुछ समय के बाद उसने यह नौकरी छोड़ दी। फिर उसने उग्गी गाँव में अपने मित्रों के साथ बच्चों का नए किस्म का स्कूल खोला। इन्हीं दिनों 1978 में पाश का विवाह परिवार की इच्छा से रुडका कला गाँव की राजविन्द्र से हुआ और 1980 में पाश एक बेटी विंकल का पिता बना।

पाश की नौकरी न होने से इस बीच घर में भी समस्याएँ आईं। घरेलू झगड़े भी हुए और तंग आकर 'आत्महत्या कर लेने को जी चाहता है' जैसी बातें भी पाश ने परिवार वालों से कहीं। किंतु पाश को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा पर आत्म-विश्वास था और वह इन उलझनों से बाहर आता रहा। रोज़गार की समस्या के संबंध में पाश और उसके बड़े भाई ओंकारसिंह को डिग्री संबंधित शिक्षा न होने की बात खटकती थी, किंतु पाश अपनी काव्य-प्रतिभा को किसी भी नौकरी से बड़ी मानता था।

ज़िंदगी की इन समस्याओं से पाश की प्रतिभा कुछ समय तक तो प्रभावित हुई। 1978 में 'हमारे समयों में' छपने के बाद कई वर्ष तक या तो पाश ने कोई कविता लिखी ही नहीं या छपवाई नहीं। जब 1982-83 में पाश ने गाँव में हस्त-पत्रिका 'हॉक' बाँटनी शुरू की तो उसकी काव्य-प्रतिभा को एक बार फिर अभिव्यक्ति मिली। 'कुएँ' कविता 1982 या 1983 में 'हॉक' के किसी अंक में लिखी थी।

गाँव व गाँव का जीवन पाश की कविता की बड़ी अमीर सामग्री है। किंतु 1983-84 में आकर या इससे पहले ही पाश को अपनी कविता के सृजन पक्ष के संदर्भ में यह अनुभव चुक गए प्रतीत होने लगे थे। टेलीविजन उसे ज़रूरी लगने लगा था। 1985 तक आते-आते, जब पाश को अमेरिका जाकर

काम करने का प्रस्ताव मिला तो उसके लिए यह अवसर नए अनुभवों की शुरुआत जैसा बन कर आया। अमेरिका जाने के पीछे पाश के लिए संभवत: दो बातें मुख्य थीं— अपनी कविता के लिए नए अनुभव की तलाश और जीवन की आर्थिक समस्याओं को सुलझाना और साथ ही अमेरिका के अपने साथियों द्वारा निकाले जाते पत्र 'एंटी-47' से सहयोग की प्रेरणा भी थी। अत: 1986 में पाश पत्नी व बच्ची के साथ अमेरिका चला गया।

अमेरिका जाकर पाश ने 'एंटी-47' हस्त-पत्रिका का अपने हस्त-लेखन में एक अंक निकाला, जिसमें धार्मिक मूलवाद पर कड़ी चोट की गई थी। ज़िंदगी के नए अनुभव भी उसने हासिल किए, किंतु जब 1987 के उत्तरार्ध में वह पंजाब आया तो अपने दोस्तों से ऐसा हिला-मिला कि उसका लौटने का मन ही नहीं होता था। वह क हता था कि पाँच वर्ष वह अमेरिका रहेगा और फिर लौट आएगा। अमेरिका जाने से पहले कुछ वर्ष पाश ने उग्गी गाँव में स्कूल चलाने का जो अनुभव हासिल किया, वह सिर्फ़ स्कूल चलाने तक ही सीमित न था। गाँव के आसपास वह हस्त-पत्रिका 'हॉक' बाँटता था। इस पत्रिका में वैज्ञानिक चिंतन की शिक्षा दी जाती थी। पाश के भतीजे-भतीजियाँ भी चाचा के स्कूल में पढ़ते थे। कमाई तो स्कूल से ज़्यादा न थी, पर मानसिक संतोष बहुत था। लखविन्द्र और धर्मपाल उग्गी उसके दोस्त भी थे और स्कूल के सहयोगी भी।

1982 के बाद पंजाब में आई धार्मिक मूलवाद की आँधी ने पाश की काव्य-प्रतिभा को प्रभावित किया। 'कुएँ' 'धर्म-दीक्षा के लिए विनयपत्र' नवंबर 1984 के सिख विरोधी दंगों पर 'बेदखली के लिए विनयपत्र' आदि कविताएँ पाश ने इस बीच लिखीं। अमेरिका से कुछ समय के लिए पंजाब लौटने पर तो वह सृजनात्मक रूप से भरा हुआ था और बहुत कुछ कहना चाहता था। 'सपने' और 'सबसे ख़तरनाक' जैसी कविताएँ उस सृजनात्मक स्रोतों की ओर संकेत करती हैं। लेकिन पंजाबी समाज, उनकी भाषा और संस्कृति इस संभावित भरपूर अमीरी से वंचित कर दी गई। नामवर सिंह ने पाश को 'शापित कवि' कहकर श्रद्धांजलि दी है, किंतु पाश से अधिक शापित तो पंजाबी भाषा, संस्कृति व पंजाबी लोग हैं, जिनके हाथों से उनके गहरी सृजनात्मक मानवीय भावनाओं से भरपूर, पाश जैसे नौजवान सांस्कृतिक पुत्र छीन लिए गए। 23 मार्च 1988 पंजाबी संस्कृति के दुर्भाग्य का एक और दिन बन गया। भगतसिंह की शहादत से ठीक 57 वर्ष बाद।